चन्दामामा
अगस्त १९८५

जीतो!

१ला इनाम : डिज़्नीलैंन्ड
यू.एस.ए. औरजापान की एक सैर.

५० २रे इनाम : शानदार
स्पोर्ट्स बाइसिकल!

५० पहले प्रवेशपत्रों के
इनाम हर हफ्ते :
बढ़िया डिजिटल घड़ियाँ!

PARLE
POPPINS

पॉपिन्स 'स्पेल-ए-प्राइज़' प्रतियोगिता में

प्रवेशपत्र तुम्हारी मनपसंद दुकान में मिलते हैं.

everest/85/PP/126

चन्दामामा

संस्थापकः 'चक्रपाणी' संचालकः नागिरेड्डी

किसी भी बात पर विवेकपूर्वक विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग दूसरों की बात पर आँख मूंद कर विश्वास करते हैं, वे ख़तरों के शिकार हो जाते हैं। किसी ऊँचे पद पर विद्यमान व्यक्ति को तो और भी अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योंकि उसकी छोटी-सी भूल बहुत लोगों को नुक़सान पहुँचा सकती है। राजकुमार चंद्रसेन अपनी सावधान बुद्धि से किस तरह देश की रक्षा करता है, यह आप पढ़िए 'खज़ाने का राज़' कहानी में।

अमर वाणी

विद्याविनयसंपन्ने, विद्याविहीने जड़े मति।
स्वजने पर कीये च पंडितः समदर्शनः॥

[चाहे कोई विद्या के कारण मिली नम्रता से संपन्न हो या विद्या से विहीन होने के कारण मूढ़मति हो, अपना हो या पराया हो— जो पंडित होते हैं, वे सबमें समान दृष्टि रखते हैं।]

वर्षः ३६ अगस्त १९८५ अंकः १२

एक प्रतिः २-०० :: वार्षिक चन्दाः २४-००

हमारे देश के प्रारम्भिक सिक्के

ई॰ सन् तीसरी शताब्दी में सर्वप्रथम हमारे देश में सिक्कों का चलन हुआ
अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रो॰ इर्फान हबीब का विचार है कि वे सिक्के चांदी के
थे ।

नया प्रतिमान

उत्तम फ़िल्मों को पुरस्कृत करने के लिए संसार के अनेक देशों में कई संस्थाएं स्थापित हैं । लेकिन जो फ़िल्में खीज पैदा करती हैं, उन्हें पुरस्कृत करने के लिए हाल ही में न्यूजेर्सी में एक समिति घटित हुई है । इस समिति के सचिव का कहना है कि फ़िल्मों का चुनाव करने के लिए हमारे सदस्यों को काफ़ी समय तक सोना पड़ता है ।

फ़िल्म के बिना एक्स-रे

फ़िल्म के बिना एक्स-रे लेने की पद्धति का आविष्कार सर्वप्रथम जापान में किया गया है । इस पद्धति के द्वारा कुछ ही क्षणों में टेलिविज़न के पर्दे पर रोग का निदान आजाता है ।

क्या आप जानते हैं ?

१. सम्राट हर्ष वर्द्धन के शासन-काल में भारत का भ्रमण करने वाला सबसे पहला चीनी यात्री कौन था ?

२. द्वितीय पुलकेशी किस वंश का था ?

३. कुतुब मीनार से ऊँची मीनार बनाने का संकल्प करने वाले, लेकिन उसके पूरा होने से पहले ही मृत्यु का ग्रास बने सुलतान का नाम क्या है ?

४. अक़बर जब गद्दी पर बैठा, उसकी उम्र क्या थी ?

५. छत्रपति शिवाजी के पिता का नाम क्या था ?

(उत्तर पृष्ठ ६४ पर देखें ।)

यमराज की भूल

एक बार नारद आकाशमार्ग से जा रहे थे। उन्होंने देखा, देवदूत एक मनुष्य को स्वर्ग की ओर ले जा रहे हैं। नारद उनके समीप गये और पूछा, ''यह कौन है ? आप लोग इसे स्वर्ग में क्यों ले जा रहे हैं ?''

''देवर्षि, इस मनुष्य का नाम दामोदर है। इसने जीवन भर पाप ही पाप किये हैं। फिर भी, इसे स्वर्ग की प्राप्ति क्यों हुई, यह कारण हम भी नहीं जानते !'' कहकर देवदूत आगे बढ़े।

देवदूतों के जवाब से नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ। जीवन भर पाप-कर्म करने के बाद स्वर्ग की प्राप्ति कैसे ? रहस्य जानने के लिए नारद यमलोक की तरफ़ चल पड़े।

यमराज ने नारद का स्वागत किया। उनका कुशल-क्षेम पूछा। कुछ क्षण विश्राम कर नारद ने कहा, ''यमराज, जिस मनुष्य ने जीवन भर पाप ही पाप किये हैं, उसे आप स्वर्ग में भेज रहे हैं, ऐसा क्यों ? कृपया आप मेरे सन्देह का निवारण कीजिये !''

यमराज हँसकर बोले, ''मुनिवर, दामोदर नाम का यह मनुष्य अत्यन्त निर्धन था। इसने सारी ज़िन्दगी पाप-कर्म किये, इसलिए इसे नरक में ही रहना था। लेकिन, एक बार बड़ी मुसीबत में फँसे एक कंगाल आदमी ने इससे मदद की याचना की। दामोदर उसकी बुरी हालत पर पसीज उठा और बोला, 'भाई, मैं कुछ कमाता-धमाता नहीं हूँ। अगर मेरे पास कुछ भी होता तो मैं ज़रूर तुम्हारी मदद करता' उसने ये बातें सच्चे दिल से कही थीं, इसलिए उसके सारे पाप धुल गये और वह शेष बचे अपने पापों के लिए नरक भोगकर अब सीधे वह स्वर्ग में जा रहा है।''

''यमराज, मुझे तो ऐसा लगता है कि इस बात में सच्चाई नहीं, कुछ धोखा है !'' नारद ने शंका प्रकट की।

''धोखा ! यह आप हम से क्या कह रहे

मूल्य ही क्या है ? उसे स्वर्ग भेजने से पहले आपको कुछ धन आदि देकर उसकी परीक्षा लेनी चाहिए थी ।'' नारद ने कहा ।

नारद की बात सुनकर यमराज ने अपने सेवकों को पुकारा और स्वर्गद्वार के समीप पहुँच रहे दामोदर को बुलवा लिया ।

यमराज की आज्ञा से देवदूतों ने दामोदर को भूलोक में एक साधारण किसान के रूप में छोड़ दिया । अब दामोदर को थोड़ी-बहुत आमदनी होती थी और वह आराम से अपनी ज़िन्दगी बिताता था ।

तभी एक दिन मुसीबत में फँसा एक आदमी दामोदर के घर पहुँचा और कुछ मदद के लिए याचना करने लगा ।

दामोदर ने उसके प्रति सहानुभूति दिखाने का स्वांग रचा और कहा, ''मैं एक साधारण किसान हूँ । बस, इतना ही कमा पाता हूँ कि कुटुम्ब का भरण-पोषण कर सकूँ । मेरी आमदनी कुछ ज़्यादा होती तो मैं ज़रूर तुम्हारी मदद करता !''

''दख रहे हैं न आप स्वयं, उसकी नकली व झूठी सहानुभूति ?'' नारद ने यमराज से कहा ।

''मैंने कभी नहीं सोचा था कि यह ऐसा नीच आदमी होगा । इसे अभी बुलवाकर मैं नरक में डलवाता हूँ ।'' यमराज क्रुद्ध होकर बोले ।

''आपने इसे भूलोक में तो पहुँचा ही दिया है । थोड़े दिन रुककर फिर इसकी परीक्षा लीजिए ! यह जो भी कामना करे, इसे दीजिए और देखिए, इसके अन्दर कैसा परिवर्तन होता

हैं ? कहीं हम धोखा खा सकते हैं ?'' यमराज चौंक पड़े ।

''हाँ, धोखा ! जिस आदमी में दूसरों के लिए सहानुभूति हो, वह कितनी भी बुरी हालत में फँसे होने पर भी विपदाग्रस्त आदमी के याचना करने पर कुछ न होने पर भी, सहायता के रूप में कुछ न कुछ दे ही देता है । वरना, दुखी मन से यह सोचकर चुप रह जाता है कि वह कितना असहाय है । पर वह इस तरह बात नहीं मिलाता कि मेरे पास धन होता तो ज़रूर मदद करता । यह तो दुष्ट बुद्धि आदमी की चालाकी है । मुझे तो सन्देह है कि दामोदर कुछ ऐसा ही आदमी है । जो आदमी निर्धन होकर दूसरों के प्रति सहानुभूति दिखाता है, उसका

है ?" नारद ने सुझाव दिया ।

उस दिन के बाद से दामोदर के खेतों में ज़्यादा पैदावार होने लगी । दामोदर ने गाँव के बीच एक सुन्दर मकान बनवा लिया । इसी बीच एक विपदाग्रस्त अदमी दामोदर के पास पहुँचा और बोला, "बड़ी मुसीबत में हूँ, कुछ मदद कर दीजिए !"

दामोदर उसके प्रति सहानुभूति दिखाकर बोला, "सुनो भाई, मैंने हाल ही में एक मकान बनवा लिया है । मेरे हाथ तंग हैं । ऐसी हालत में, बोलो, मैं तुम्हारी क्या मदद करूँ ?"

दूसरे साल की पैदावार से जो आँमदनी हुई, उस पूँजी से दामोदर ने शहर में एक छोटा-मोटा व्यापार शुरू किया । वह व्यापार देखते ही देखते चमक उठा । पैसे की वर्षा होने लगी । दामोदर ने शहर में एक महल जैसा मकान खड़ा कर लिया और बड़े व्यापारों में पैसा लगा दिया ।

एक दिन मुसीबत का मारा एक साधारण आदमी दामोदर के पास पहुँचा और उसे उसने अपनी रामकहानी सुनायी । दामोदर ने उसकी करुण कहानी ध्यान से सुनी, फिर कहा, "इधर कुछ दिन पहले जो मैंने यह मकान बनवाया है, उसके लिए मुझे बहुत कर्ज़ लेना पड़ा । अब कहीं जाकर मैं वह कर्ज़ पूरा चुका पाया । मेरे दोनों बेटे राजधानी के बड़े स्कूल में पढ़ रहे हैं । उनकी पढ़ाई के पीछे ढेरों धन खर्च हो रहा है । मुझे ज़रा सन्तोष की साँस लेने दो, मैं अवश्य तुम्हारी सहायता करूँगा !"
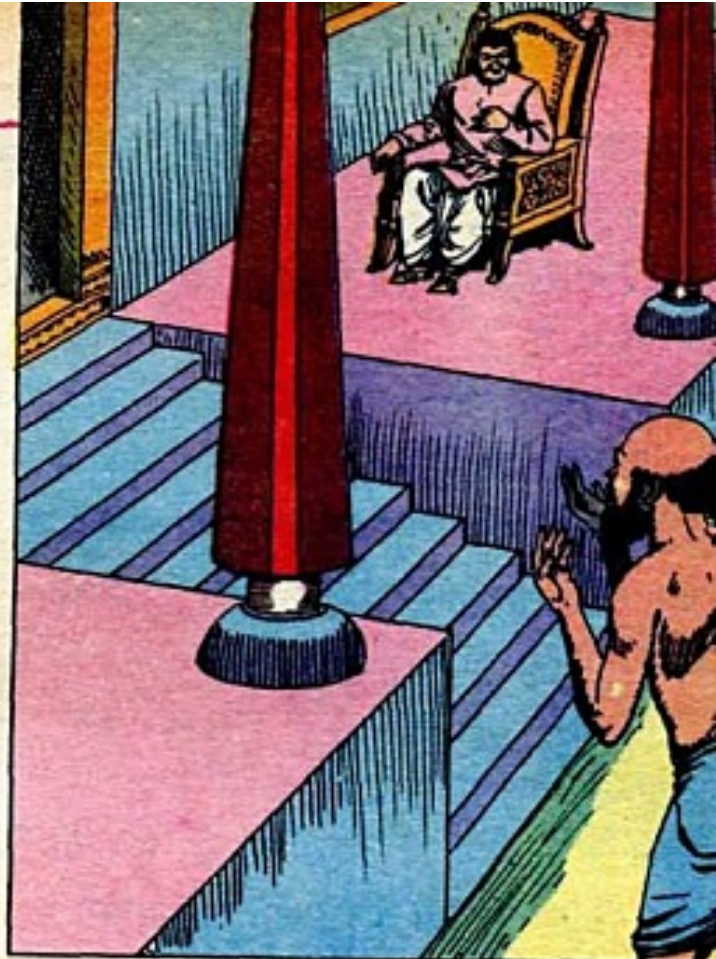
इसके बाद दामोदर को व्यापार में अपार लाभ हुआ और उसने चार बड़े जहाज़ ख़रीदे । उनके द्वारा विदेशों के साथ नौका-व्यापार किया । व्यापार खूब चमका और दामोदर करोड़पति बन गया । अब वह शहर के इने-गिने धनवानों में से एक था ।

उन्हीं दिनों एक गरीब आदमी दामोदर के घर पहुँचा । दामोदर ने उसकी बातों पर ज़रा भी कान नहीं दिया । उसके आने का कारण भर पूछकर कहा, "आज मैं कुछ ज़रूरी कामों में फँसा हुआ हूँ । मुझे दम भर की भी फ़ुरसत नहीं ! कल आजाओ, मैं अवश्य तुम्हारी मदद करूँगा ।" गरीब आदमी मन में आशा रखकर चला गया ।

दूसरे दिन वह आदमी बड़ी उम्मीद लेकर दामोदर के घर पहुँचा। दामोदर ने उसे देखते ही कठोर स्वर में पूछा, "तुम कौन हो ? मुझसे तुम्हें क्या काम है ?"

वह आदमी भौंचक रह गया। उसने स्मरण दिलाया कि पहले दिन वह उससे मिल चुका है और आज आने के लिए कहा गया था, इसलिए आया है। इसके बाद वह अपनी दीन दशा के बारे में कहने लगा।

दामोदर ने उसे बीच में ही रोक कर कहा, "सुनो, मेरे पास पल भर का भी समय नहीं है। मैं व्यापार के काम से विदेश जा रहा हूँ। मेरे लौटने में कम से कम तीन महीने लग जायेंगे। तुम इसके बाद मुझसे मिल लो। मैं अवश्य तुम्हारी मदद करूँगा।"

वह आदमी तीन महीने तक धैर्यपूर्वक इन्तज़ार करता रहा। फिर एक शाम दामोदर से मिलने आया। लेकिन दामोदर के नये द्वारपालों ने उसे अन्दर जाने से रोक दिया और जब उसने आग्रह दिखाया तो बाहर धकेल दिया।

उसने सारी रात दामोदर के द्वार पर ही बिता दी। दूसरे दिन दामोदर घर से बाहर निकला तो उसके आगे-पीछे, दायें-बायें कितने ही लोग थे। उन्होंने उस गरीब को दामोदर के पास तक पहुँचने ही नहीं दिया। ऐसा मालूम होता था कि उसकी पुकार दामोदर के कानों में ही नहीं पड़ी। दामोदर दो-चार क़दम पैदल चल कर एक आलीशान बग्घी में सवार हुआ और आँखों से ओझल हो गया।

गरीब आदमी ने अपने मन में सोचा कि ऐसे धनवानों के झूठे आश्वासनों पर विश्वास करके अपना वक्त बरबाद करने की अपेक्षा कोई मेहनत व मजदूरी करके अपना पेट पाला जाय तो उत्तम होगा। अथवा भीख मांग कर आधा पेट ही सही भर लेना बेहतर होगा।

"मुनि, सचमुच ही मुझसे भूल हुई ! अब इसकी परीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है। मैं इसे अभी नरक में डलवाता हूँ।" कहकर यमराज ने अपने दूतों को पुकारा।

दूत आये और यमराज की आज्ञा से दामोदर को पकड़कर नरक में डाल आये।

१

[चंद्रवर्मा कापालिनी से विदा लेकर उत्तरी दिशा में चल पड़ा। जंगल में एक जगह कालनाग के निर्देश से उसने एक विचित्र वृक्ष का फल तोड़ कर खाया, जिससे उसे पशु-पक्षियों की भाषाएँ समझ में आने लगीं। कालनाग से अलग होने के बाद जब वह आगे बढ़ा तो उसे एक उष्ण प्रवाह दिखाई दिया। उसे पार करने वाले पुल की तरह पड़े एक महासर्प की पीठ पर से होकर चंद्रवर्मा उस पार दौड़ने लगा। अब आगे पढ़िये...]

चंद्रवर्मा सर्प की पीठ पर दौड़ता हुआ जब नदी के बीच में पहुँचा तब नदी के गर्म जल से निकल रही भाप से उसका दम घुटने लगा। उसे ऐसा महसूस हुआ कि उसके कपड़ों में आग लग गयी है। प्रवाह की ऊँची लहरों से निकल रही गर्म फुहारों के छींटे उसके शरीर पर गिर रहे थे। उसे यह घबराहट होने लगी कि कहीं वह बेहोश होकर नदी की धारा में न गिर जाये।

पर फिर भी वह हिम्मत रख आगे की तरफ़ दौड़ता जा रहा था। अपने आगे सर्प की पीठ पर दौड़ रहे बन्दरों पर उसकी दृष्टि केंद्रित थी। थोड़ी देर बाद उसे उस पार की ज़मीन दिखाई दी और वह सारी चिन्ता भूलकर एक ही छलांग में नीचे कूद गया और वृक्षों की तरफ़ दौड़ने लगा।

अभी-अभी चंद्रवर्मा को जो विचित्र अनुभव हुआ था, उसके स्मरण मात्र से वह सिर से पैर तक काँप उठा। वह हाँफता हुआ एक वृक्ष के

थोड़ी देर बाद उसका सिर पेड़ों के बीच ओझल हो गया। ताड़वृक्ष की तरह लंबा उसका शरीर धीरे-धीरे आगे की ओर सरक रहा था। अब सर्प की दृष्टि उस पर नहीं पड़ेगी, यह निश्चय कर लेने के बाद चंद्रवर्मा पेड़ के नीचे से आगे बढ़ आया और तेल से पुते हुए के समान चिकने उसके शरीर को गौर से देखने लगा।

वह समझ गया कि सर्पकी चमकती काली देह पर उसकी तलवार का कोई असर नहीं होगा। फिर भी उसे उत्सुकता हुई और उसने सोचा कि तलवार को एक बार गड़ाकर तो देखा जाये। चंद्रवर्मा ने अपनी तलवार खींची और सर्प के शरीर पर भोंक दी।

सर्प को चींटी काटने तक का अनुभव नहीं हुआ।

चंद्रवर्मा ने विस्मित होकर चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ायी। फलों से लदे पेड़ों को देखते ही उसे अपने भूखे होने का स्मरण हो आया। उसने तलवार अपने म्यान में रखी और पास के एक पेड़ पर चढ़ गया। उसने एक आम तोड़कर मुँह से लगाया ही था कि सारे जंगल को कँपा देने वाली हाथी की चिंघाड से उसका फल हाथ से गिर गया।

चंद्रवर्मा ने उस चीत्कार की तरफ़ अपना सिर घुमाया।

उसे कहीं कोई हाथी नहीं दिखाई दिया। पर थोड़ी दूर पर वृक्षों की टहनियाँ इस तरह झूम रही थीं मानो तूफ़ान के झोंकों से वृक्ष जड़ों

तने से टिक गया और महासर्प की ओर ताकने लगा।

वह सर्प अपनी भारी देह से अभी तक नदी पार नहीं कर पाया था और धीरे-धीरे सरक रहा था। उसे अपनी पीठ पर से दौड़ कर गये बन्दरों और चंद्रवर्मा का कोई भान तक नहीं हुआ था। जब वह पार पहुँच चुका तो चंद्रवर्मा ने देखा कि उस महासर्प का सिर ही क़रीब दस-बारह फुट व्यास का है।

उसकी लाल आँखें अंगारों की तरह दहक रही थीं। चंद्रवर्मा को लगा, अगर उसकी दृष्टि उस पर पड़ जाये तो उसका जीवित रहना असंभव है। लेकिन क़िस्मत अच्छी थी, सर्प ने चंद्रवर्मा की दिशा में अपना सिर नहीं घुमाया।

सहित हिल रहे हों। तभी कुछ और हाथियों की चिंघाड भी एक साथ सुनाई दी और उसने देखा, महावृक्षों की ऊँची-ऊँची टहनियाँ टूट कर गिर रही हैं।

चंद्रवर्मा वृक्ष पर और भी ऊँचे चढ़ गया और उन भयानक चीत्कारों की तरफ़ आँखें दौड़ाने लगा। उसने जो दृश्य देखा, वह अत्यन्त दुस्साहसी और पराक्रमी लोगों के भी रोंगटे खड़े करनेवाला था।

उस महासर्प ने अपना विकराल मुँह खोल रखा था और वह एक हाथी को निगलने की इच्छा से उसके सिर को मरोड़कर पकड़ने की कोशिश कर रहा था।

प्राण-संकट में पड़ा हाथी उसकी पकड़ से छूटने के लिए चिंघाड़ता हुआ छटपटा रहा था। उसके झुंड के हाथी कान खड़े किये, सूंड ऊपर उठाये डर के मारे इधर-उधर भाग रहे थे। उनके पैरों के नीचे छोटे-छोटे वृक्ष कुचले जा रहे थे और माथे के आघात से बड़े वृक्षों की टहनियाँ टूट-टूट कर गिर रही थीं। उस महासर्प का ध्यान और कहीं नहीं था। वह अपने शरीर को हाथी के चारों तरफ़ लपेटकर कस लेना चाहता था और उसे अपने गुफ़ा जैसे मुँह में खींचने की कोशिश कर रहा था। वह दृश्य अत्यन्त भयानक था।

"हे भगवान, मैंने तो और भी भयानक लोकों में क़दम रख दिया है। मैं आपकी शरण में हूँ।" चंद्रवर्मा मन ही मन भगवान से दुआ कर रहा था। उसे लगा, इसकी तुलना में कापालिनी का जंगल तो उपवन की तरह मनोहर है।

वह इन भयानक दृश्यों के कारण अपना विश्वास खो बैठा था। अभी तो अनेक योजन पैदल चलना है और शंखु के निवास तक पहुँचना है। अभी तो यात्रा शुरू ही हुई है। इतने में ही जो अनुभव उसने प्राप्त किये हैं, क्या वे दुश्चिंता के लिए काफ़ी नहीं हैं?

चंद्रवर्मा सोचने लगा कि अगर उसे अपूर्व दैवी शक्तियों की सहायता प्राप्त न हो तो इन भयंकर जंगलों और पहाड़ी घाटियों में उसका मौत के मुँह में जाना निश्चित है।

चंद्रवर्मा का साहस, पराक्रम एवं उत्साह

जाता रहा और वह अनेक दुश्चिन्ताओं से ग्रस्त होकर पेड़ की शाखाओं में बेहोश-सा लुढ़क गया ।

उसकी भूख-प्यास सब गायब हो चुकी थी। वह समझ गया था कि जिस कार्य को करने लिए निकला है, वह कितना दुस्साध्य है। उसने सोचा कि जादूगरनी कापालिनी और शंखु को उनके हाल पर ही छोड़कर वह कहीं और चला जाये ! पर सवाल बड़ा भारी था, जाये तो कहाँ जाये ? वह अपने गाँव और घर से इतनी दूर आ पड़ा था कि उसे स्वयं ज्ञात न था कि वह कहाँ पर है ? दुनिया के किस भूभाग में है और उसका देश तथा गाँव किस दिशा में है ! सब से विचित्र बात तो यह थी कि उसे अपने भविष्य का कुछ पता न था, और न उसके बारे में सोचने व विचारने की स्थिति में था। क्यों कि वह ऐसे संकटों से बराबर गुजरता जा रहा था उसे इस बात का संकेत तक नहीं मिल रहा था कि अगले क्षण क्या होने वाला है ? ऐसी संदिग्धावस्था में चंद्रवर्मा साहस बटोर कर विधि के हाथ अपने को समर्पित कर आगे बढ़ा जा रहा था ।

वह बराबर चौकन्ने हो सोचता रहा कि क्या किया जाय ! अपने कर्तव्य के बारे में सोचते-सोचते चंद्रवर्मा भी थक कर शिथिल हो चुका था ।

इस तरह सोच में डूबा चंद्रवर्मा नींद की गोद में सरक गया। सूरज कब डूब गया, पक्षी कब चहचहाने लगे, इसका उसे कोई भान तक न था ।

धीरे-धीरे अंधेरा हो गया। आसमान में तारे टिमटिमाने लगे। चाँद अभी नहीं निकला था। हवा एकदम बंद हो गयी थी।

ऐसे निस्तब्ध वातावरण में अचानक झंझावात के स्पर्श का अनुभव हुआ और चंद्रवर्मा चौंककर जाग उठा। उसे लगा कि हवा के तीव्र झोंकों के बीच वह ऊपर उड़ता जा रहा है। जिन शाखाओं पर वह पड़ा था, वे नीचे छूट चुकी थीं।

चंद्रवर्मा ने पक्का समझ लिया कि अब उसकी आयु समाप्त हो गयी है। उसकी आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। वह जीवन और मृत्यु के झोंकों में झूलता रहा। आख़िर उसकी पकड़ ढीली हो गई, परिणाम स्वरूप इसी बीच वह धम्म से एक ऐसी जगह गिरा, जहाँ उसे कम्बल के जैसे चुभने की सी अनुभूति हुई।

"शुक्र है, मैं चट्टानों पर नहीं गिरा, बाल-बाल बच गया।" सोचता हुआ चंद्रवर्मा उठने को हुआ, तभी उसे अपने नीचे का वह प्रदेश हिलता हुआ-सा नज़र आया। विस्मित होकर उसने बगल की तरफ़ देखा तो हरी लंबी घास उसके रास्ते में आगयी और वह स्पष्ट देख नहीं सका। उसने हाथों से घास को हटाकर आगे देखने की कोशिश की तो उसे पक्षियों का वार्तालाप सुनाई दिया।

"हम आज की रात यहीं पर बितायें तो अच्छा होगा। इस उष्ण प्रवाह से होकर आनेवाली हवा मुझे अत्यन्त आह्लादजनक लगती है। इसलिए इस स्थान को छोड़ कर जाने का मन नहीं हो रहा है।" एक पक्षी ने कहा।

पास बैठे दूसरे पक्षी ने स्वीकृति सूचक ध्वनि की। चंद्रवर्मा अब एकदम समझ गया कि वह कहाँ है ! हुआ यह था, कि जब वह सो रहा था, उस वक्त दो गरुड़ आकर उसके समीप उतरे । उनके पंख फड़फड़ाने से जो झोंके निकले, उनसे उड़कर वह क़िस्मत से एक गरुड़ की पीठ पर ही आ गिरा ।

हाथी के बराबर विशाल उस पक्षी के लिए उसका वज़न कोई अर्थ नहीं रखता था, इसीलिए वह सुरक्षित यहाँ तक पहुँच गया था और अब भी उस गरुड़ पक्षी की पीठ पर बैठा था, जिसने स्वीकृति सूचक ध्वनि की थी ।

चंद्रवर्मा ने सोचा कि पक्षियों की नज़र पड़ने से पहले उसे इसकी पीठ पर से उतर कर कहीं भाग जाना चाहिए ।

चंद्रवर्मा धीरे-धीरे नीचे उतरने की कोशिश करने लगा । पर उसी क्षण आसमान में बिजली के कौंधने जैसा प्रकाश फैल गया । उसने सिर उठाकर ऊपर देखा, आसमान में धक् धक् प्रकाश फैलाता एक पक्षी ध्वनि करते हुए उसके पास उतर रहा है ।

उसे एकदम स्मरण आगया कि निश्चय ही यह कापालिनी का बताया हुआ 'अग्नि पक्षी' है, मांत्रिक शंखु का-अग्नि-पक्षी । अब उसे अपने कर्तव्य का बोध हुआ । यह भी विचार आया कि वह निर्णीत लक्ष्य पर आगे बढ़ रहा है । अपने लक्ष्य की पूर्ति पर उस का भविष्य स्पष्ट हो जाएगा । अग्नि पक्षी को सामने उतरता हुआ देख चंद्रवर्मा चौकन्ना हो गया और सतर्क होकर आगे के कर्तव्य के बारे में सोचने लगा । बूढ़ी की बताई हुई बातों की याद करने लगा ।

अग्नि पक्षी को उतरते देख गरुड़ों ने अपनी चोंच उठाकर उसका स्वागत किया । वह नीचे उतरते ही बोला, "मैं बड़ी देर से तुम्हारी खोज कर रहा हूँ ।"

"ओह, अच्छा ! पर यह बताओ, तुम्हारा हमसे क्या काम है ?" एक गरुड़ ने पूछा ।

अग्निपक्षी ने चोंच से अपने पंखों को सँवारा और बोला, "मेरे मालिक शंखु ने मुझे एक काम सौंपा है । वह कोई कठिन काम नहीं है । बस इतना ही है कि बुढ़ापे से जर्जर एक जादूगरनी को पकड़कर शंखु के पास ले जाना

है । यह काम मेरे लिए इसलिए कठिन है, क्योंकि दिन में मैं देख नहीं सकता और रात के समय मेरे अग्निरूप को देखकर वह अपने को बचाने की कोशिश करने लगती है ।

आज की रात तुम दोनों एक काम करो । बिना किसी आहट के उस जादूगरनी के जंगल में पहुँच जाओ और उसे चोंच में पकड़कर मेरे मालिक के पास पहुँचा दो । मैं हमेशा तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा ! मेरेलिए ऐसी मदद करोगे न ?''

अग्निपक्षी की बातें सुनकर गरुड़ लंबी साँस लेकर बोला, ''आज की रात हम एक योजन तक भी नहीं उड़ सकते । सूर्यास्त से लेकर आधी रात तक हम समुद्रों के बीच के द्वीपों का भ्रमण करते रहे हैं । इस कारण से हम थक कर चूर हो चुके हैं,हमारा पेट खूब भरा है । पास के उष्ण प्रवाह के झोंके हमें थपकियाँ दे रहे हैं और अब हम तुरन्त सोना चाहते हैं । तुम विश्वास कर लो, कल रात को अवश्य ही हम तुम्हारा यह काम कर देंगे !''

अग्निपक्षी ने बड़ी प्रसन्नता से अपने पंख फड़फड़ाये । और ज़ोर से चिल्लाकर बोला, ''दिन के समय उस जादूगरनी पर कब्जा करना आसान नहीं है । वह बड़ी धूर्त चालाक है । उसके अपने बड़े शक्तिशाली सेवक भी हैं । उस जादूगरनी ने बरसों तक रातों में अपनी पलक भी नहीं झपकायी है, फिर भी उस पर कोई असर नहीं हुआ । लेकिन इधर उसका शरीर बिगड़ गया है और वह पहले की तरह जागती

नहीं है ।

तुम लोग अंधेरे में छिपकर अचानक उस पर धावा बोल देना और उसे अपनी चोंच में इस तरह दबा लेना कि वह मंत्रोच्चारण तक न कर पाये । फिर वह तुम्हें कोई नुक़सान न पहुँचा पायेगी ।

इसके बाद तुम उसे लेकर उस पहाड़ की तरफ़ उड़ जाना, जहाँ मेरे मालिक का निवास है और उसे मेरे मालिक के पैरों पर गिरा देना । उस जादूगरनी को उचित दंड मिलेगा और तुम्हें उचित पुरस्कार की प्राप्ति होगी !''

''मुझे तुम्हारे मालिक से और कोई पुरस्कार पाने की आवश्यकता नहीं है । लेकिन मेरी चिरकाल से एक इच्छा है अगर वह मुझे

संकल्प मात्र से ही सारे टापुओं में पहुँचने की शक्ति प्रदान करे तो मैं बहुत खुश हो जाऊँगा ! ज़िन्दगी भर मैं उसके प्रति कृतज्ञ रहूँगा ।" एक गरुड़ ने कहा ।

"मेरी भी कोई बड़ी लालसा नहीं है। मुझे तो वह मृत्यु से बचने का कोई मंत्र दे दे तो मैं बहुत-बहुत खुश हो जाऊँगा !" दूसरा गरुड़ बोला ।

'ये दोनों बावरे पक्षी मांत्रिक शंखु को शायद भगवान समझ रहे हैं इसीलिए ये अपने अनोखे विचार प्रकट करके उन की पूर्ति के सपने देख रहे हैं। ये भी कैसे मूर्ख हैं ! कहीं कोई प्राणी अमर हो सकता है ? कहा जाता है, देवता तो अमर होते हैं, पर मर्त्य लोक के प्राणी कभी अमर नहीं हो सकते हैं ! आख़िर ये मांत्रिक भी मौत के शिकार हो जाते हैं। ऐसी हालत में वे दूसरे प्राणियों को मृत्यु से कैसे बचा सकते हैं ! आख़िर कोई कामना की, तो भी कैसी असंभव ? इन गरुडों को उल्लू बना कर अग्नि पक्षी खुद अपभा उल्लू सीधा करना चाहता है ! यह सोचकर चंद्रवर्मा मन ही मन हँसा ।

अग्नि पक्षी जानता था कि गरुडों की कामनाओं की पूर्ति करना मांत्रिक शंखु की शक्ति के बाहर की बात है। इसलिए वह गरुड़ों को निश्चित रूप से कुछ आश्वासन नहीं दे सकता था । इसलिए उसने मन में सोचा कि उनके सवालों का कोई उत्तर न देना ही बेहतर होगा ! इसलिए गरुड़ पक्षियों की माँगों का कोई निश्चित समाधान न देकर ऐसे ही सिर हिलाकर अग्निपक्षी ने कहा, "क्या तुम लोग कल दिन के समय मेरे निवास-स्थान पर आ सकते हो ? यदि हो सका, तो मैं तुम्हें अपने मालिक को दिखा दूँगा ।"

अग्निपक्षी ने फुर्र की ध्वनि की और झपट्टे के साथ देखते-देखते आसमान में उड़कर बड़ी तीव्र गति से उत्तरी दिशा में ओझल हो गया।

गरुड़ थोड़ी देर ऊँघते हुए बातें करते रहे । फिर उन्होंने अपनी चोंच ज़मीन पर टिका दीं और मीठी-नींद सोने का उपक्रम करने लगे ।

(क्रमशः)

शाप का रहस्य

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये। पेड़ से शव उतार कर कंधे पर डाला और हमेशा की तरह श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करने वाले बेताल ने कहा, "राजन्, दिल दहलानेवाले इस श्मशान में आधी रात के समय आप जो असहनीय यातनाएँ झेल रहे हैं, उसे देखकर मेरे मन में यह शंका होती है कि आप किसी के शाप से ग्रस्त होकर तो ये मुसीबतें नहीं झेल रहे हैं ? पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप इतने विवेक शून्य नहीं हैं कि किसी को असन्तुष्ट कर उसके शाप का शिकार हो जायें। फिर भी, रत्नपाल नाम के एक धनिक व्यापारी की तरह, हो सकता है, आपने भी अनजाने में साधारण से दीखने वाले किसी तपस्वी को असन्तुष्ट कर उसका शाप पा लिया हो ! मेरी बात सच्ची है न ! उदाहरण के रूप में मैं आपको रत्नपाल की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये !"

बेताल कथा

बेताल ने कहानी सुनाना आरंभ किया:

सेठ रत्नपाल के पास धन-धान्य की कोई कमी न थी, पर उसके कोई संतान न थी। कुछ समय बाद उसे किसी ने बताया कि नैमिषारण्य के एक आश्रम में महर्षि भुवनेंद्र निवास करते हैं। उनके पास संतान प्रदान करनेवाली एक दिव्य औषधि है।

रत्नपाल ने सुना तो सेवकों को अपना रथ जोतने की आज्ञा दी। उत्तम किस्म के घोड़े जुते रथ पर बैठकर रत्नपाल ने सात दिन और सात रात तक यात्रा की। जब वह नैमिषारण्य के समीप यतिग्राम नाम के स्थान में पहुँचा, तो वहाँ के एक अनुभवी वृद्ध ने रत्नपाल से कहा, "श्रेष्ठि रत्नपाल, महर्षि भुवनेंद्र बड़े कृपालु हैं वे अवश्य ही तुम्हारी कामना को पूर्ण करेंगे। लेकिन महर्षि के आश्रम में तुम्हें अकेले और पैदल चल कर जाना चाहिए।"

रत्नपाल रथ से उतर पड़ा और नैमिषारण्य के बीच विद्यमान महर्षि के आश्रम में पैदल चल कर पहुँचा। रत्नपाल को पैदल चलने की आदत न थी। आश्रम के पास पहुँचने के बाद एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ा सका और वहीं शिथिल हो पड़ गया।

उस वक्त आश्रम के आँगन में गोपाल नाम का एक युवक झाड़ू दे रहा था। उसने रत्नपाल को गिरते हुए देखा तो दौड़ा-दौड़ा आया।

रत्नपाल ने वैसे ही पड़े-पड़े कहा, "अरे सुन, क्या तू थोड़ी देर मेरे पैर दबा देगा?"

"अवश्य दबा दूँगा! पर जितनी देर मैं आप के पैर दबाऊँगा, बाद में, उसके दुगुने समय तक आपको मेरे पैर दबाने होंगे।" युवक गोपाल ने अपनी शर्त बतायी।

एक झाड़ू लगानेवाले के मुँह से ऐसी बातें रत्नपाल सहन नहीं कर पाया। वह क्रोध में आकर बोला, "बड़े मूर्ख मालूम होते हो कि छोटे-बड़े का फ़र्क़ तक नहीं जानते! तुम मुझसे अपनी सेवा कराना चाहते हो?"

"कहते तो आप ठीक हैं! पर, मुझे यह बताइये, अगर आपके एक पुत्र हो और वह मेरी उम्र का हो जाये, तो आपके यहाँ उसकी सेवा बड़ी उम्र के लोग करेंगे या छोटी उम्र के?" गोपाल ने पूछा। यह सवाल सुनकर तो रत्नपाल

और भी झल्ला उठा, बोला, "मेरे पुत्र के साथ तुम अपनी तुलना करते हो ? वह करोड़ों की संपत्ति का मालिक होगा और तुम एक साधारण से कर्मचारी !"

इस पर गोपाल बोला, "ऐसा मालूम होता है कि तुम्हें धनवान होने का अहंकार है। लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि इतनी सारी संपत्ति के होने पर भी तुम संतान पाने के लिए एक भिखारी की भाँति इस आश्रम में आये हो। तुम देखना, तुम्हारा पुत्र एक सेवक की भाँति मेहनत करते हुए अपना जीवन बितायेगा।"

यह कहकर गोपाल वहाँ से चला गया।

रत्नपाल ने गोपाल की बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। वह वहीं लेटा विश्राम करता रहा और थकान दूर होने पर जब उठने को हुआ तो उसकी दृष्टि आश्रम में प्रवेश कर रहे महर्षि भुवनेंद्र पर पड़ी।

महर्षि स्वयं उसके पास आये और उसके आने का प्रयोजन जानकर बोले, "आपको बड़ा कष्ट हुआ ! इतनी दूर इतनी कठिनाइयाँ उठा कर आये !" महर्षि भुवनेंद्र ने रत्नपाल को हाथ का सहारा दिया और आश्रम के अन्दर ले जाकर उसका अतिथि-सत्कार किया।

महर्षि की नम्रता और उदारता पर रत्नपाल को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह कुछ अभिभूत होकर बोला, "महर्षि, महान व्यक्तियों और नीच लोगों के बीच कितना अन्तर होता है ! आपने इतने पूजनीय होकर भी मेरे साथ कितना प्रेमपूर्ण व्यवहार किया ! सेवक होने के बावजूद गोपाल ने मेरा कैसा तिरस्कार किया ?" इन शब्दों के साथ रत्नपाल ने महर्षि को सारी घटना सुना दी।

महर्षि उस घटना पर आश्चर्य प्रकट करके बोले, "मैं जो औषध तुम्हें दे रहा हूँ, उसके प्रभाव से तुम्हें अवश्य ही सन्तान की प्राप्ति होगी। लेकिन गोपाल की बातें शाप बनकर तुम्हें पीड़ा पहुँचायेंगी। गोपाल आश्रम का सेवक तो अवश्य है पर उच्च कोटि का साधक भी है !"

अब तो रत्नपाल घबरा गया, बोला, "गोपाल का व्यवहार अत्यन्त असभ्यतापूर्ण था। उसकी बातें मेरे लिए शाप बन जायें, यह तो मेरे प्रति बड़ा अन्याय होगा। इससे बचने के

दीं ।

रत्नपाल महर्षि की बातों का कोई उत्तर नहीं दे पाया । कुछ देर चुप रह कर बोला, "महर्षि, मैं अपने अपराध को स्वीकार करता हूँ । पैदल चलने की मेरी आदत नहीं है । मैं थक गया था, इसलिए मेरे मुँह से ऐसी बातें निकल गयीं । आप मेरी बातों को अहंकारपूर्ण न समझें । आप मुझ पर अनुग्रह कीजिए और मुझे गोपाल के शाप से मुक्त कर दीजिए !"

"यदि आप सचमुच उत्तम स्वभाव के हैं तो आपका सद्व्यवहार ही आपकी रक्षा करेगा । सत्पुरुषों को कोई शाप नहीं सताता है ।" ये शब्द कह कर महर्षि भुवनेंद्र ने रत्नपाल को एक औषध दी और कहा, "इसे आप अपनी पत्नी को खिलाइये । इसके प्रभाव से आपकी पत्नी गर्भवती होगीं और नौ महीने बाद एक सुन्दर बालक को जन्म देगी । ठीक उसी समय आप की एक दासी के गर्भ से भी एक पुत्र का जन्म होगा । पैदा होते ही आपका पुत्र दासी के हाथों में पड़ जायेगा और दासी-पुत्र आपके हाथों में आजायेगा । इसके बाद वह दासी आपको दिखाई न देगी । कभी न कभी यही गोपाल आपके गाँव में आयेगा । तब आप गोपाल को सन्तुष्ट कर अपने पुत्र का पता लगा लेना !"

रत्नपाल औषध लेकर अपने गाँव लौट आया । महर्षि की सारी बातें सत्य प्रमाणित हुईं । रत्नपाल हताश हो गया । उसने यह सोचकर सारा रहस्य पत्नी को बता दिया, ताकि

लिए आपको ही कोई उपाय करना होगा ।"

"गोपाल के व्यवहार में कोई अशिष्टता नहीं थी । वह यदि आपकी सेवा करेगा तो बदले में उसे भी सेवा कराने का अधिकार है । आपने उसे यह शिक्षा देने की कोशिश की कि बड़े लोगों को छोटों की सेवा नहीं करनी चाहिए । आपके अपने ही बारे में यह बात झूठ है । क्या आपने बचपन से लेकर आज तक अपने बड़े लोगों से ही सेवा नहीं करायी है ? आपने अपने धन के अहंकार के कारण उसे नीचा देखा । व्यवहार आपका अशिष्टता पूर्ण था, उसका नहीं । उसने आपको शाप दिया है और यह सत्य है कि इस आश्रमवासियों के शाप कभी व्यर्थ नहीं जाते ।" महर्षि ने सारी बातें स्पष्ट कर

वह पराये शिशु पर ही अपना सारा वात्सल्य न उंड़ेल दे। उसने कहा, "देखो सुलभा, हमारा पुत्र कुछ वर्षों बाद ही हमारे यहाँ आयेगा। अगर तुम इस शिशु पर अपनी ममता बढ़ाओगी तो बाद में उस दासी मल्लिका के हाथों में इसे देने में तुम्हें अपार दुख होगा। यह सब हमारा दुर्भाग्य है। खैर, जो हुआ, सो हुआ, यह बात किसी को पता नहीं लगनी चाहिए!"

सच्ची बात मालूम होते ही रत्नपाल की पत्नी सुलभा रो पड़ी। उसने अपनी गोद में आये शिशु को दासियों के हाथों में सौंप दिया। माता-पिता दोनों ही उसे दूर रखते। वह बालक रत्नपाल के सेवकों के बीच पलने-बढ़ने लगा और धीरे-धीरे उनमें से ही एक हो गया। वह भी अन्य दास-पुत्रों की तरह रत्नपाल के परिवार की सेवा करता और रूखा खाता।

रत्नपाल के कुछ मित्रों ने इसका कारण पूछा तो रत्नपाल ने जवाब दिया, "मेरे घर में कई बरसों बाद एक बालक जन्मा है। महर्षि ने बताया है कि कुछ वर्षों तक इसका पालन-पोषण सेवकों के बीच उन्हीं की तरह होना चाहिए।"

दस वर्ष बीत गये। एक दिन रत्नपाल को ख़बर मिली कि गोपाल नाम के एक योगी उसके गाँव में पधारे हैं। उनके सामने पहुँच कर रत्नपाल ने देखा, गोपाल स्वामी एक स्त्री को समझा रहे थे, "तुमने एक माँ और बेटे को अलग किया। तुम्हारे सारे कष्टों का कारण तुम्हारा यही गुनाह है। तुम उन्हें मिला दो,

तुम्हारी सारी यातनाएँ दूर हो जायेंगी।"

सुनकर रत्नपाल को बड़ा गुस्सा आया। वह बड़े तमाके से गोपाल स्वामी के सामने जाकर खड़ा हो गया और बोला, "आप भुवनेंद्र महर्षि के आश्रमवासी गोपाल तो नहीं हैं?"

"हाँ, मैं वही हूँ!" गोपाल स्वामी ने सिर हिलाया। तब रत्नपाल ने बड़ी रंजिश के साथ वहाँ इकट्ठा हुए लोगों के सामने अपना वृत्तान्त सुनाया और गोपाल से बोला, "महाशय, आपने भी एक छोटे से कारण को लेकर एक माँ-बेटे को अलग किया। आप अपने इस अपराध के कारण कौन सी यातनाएँ भुगत रहे हैं? कृपया मुझे बताइये!"

गोपाल ने कहा, "मैंने किसी को अलग नहीं

किया है। आपके घर में पलकर बड़ा होनेवाला वह बालक आपका अपना पुत्र है।"

रत्नपाल सुनकर अवाक् रह गया। उसकी आँखों से दुख और आनन्द के आँसू बह निकले। वह गोपाल के चरणों में गिर पड़ा और उनकी आज्ञा लेकर दौड़ा अपने घर पहुँचा।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर विक्रमार्क से पूछा, "राजन्, गोपाल ने रत्नपाल से यह झूठी बात क्यों कही कि वह बालक उसी का है? क्या इसलिए कि जल्दबाजी में आकर उसने जो शाप दिया था, उसका परिमार्जन हो जाये? इस सन्देह का समाधान आप जानते हुए भी न करेंगे तो आपका सिर फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा!"

राजा विक्रमार्क ने बेताल के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, "यह कहना उचित नहीं है कि महर्षि भुवनेंद्र जैसे महान व्यक्ति का शिष्य गोपाल झूठ बोलेगा। रत्नपाल के इन दुखपूर्ण अनुभवों का कारण उसकी कलुषित आत्मा है। वह इस भय का शिकार हो गया कि गोपाल ने उसे शाप दिया है। उसने महर्षि की चेतावनी के मर्म को समझने का प्रयत्न नहीं किया। उसके मार्ग में उसका अहंकार रोड़ा बनकर खड़ा था। महर्षि ने उसे स्पष्ट संकेत दिया था कि उत्तम स्वभाव वाले व्यक्ति को कोई भी शाप नहीं सताता। फिर भी इस भ्रम में पड़कर कि उसके तथा दासी के पुत्र का अदला-बदला हुआ है, उसने अपने पुत्र को सेवकों के हाथ सौंप दिया। इसमें उसके स्वभाव की उच्चता दिखाई नहीं देती। प्रसूता दासी का गायब हो जाना, गोपाल का एक नारी पर इसलिए क्रोध प्रकट करना कि उसने एक माँ-बेटे को अलग किया है— ये संयोग से घटी हुई घटनाएँ हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि रत्नपाल के जन्म लेनेवाला और पलनेवाला वह बालक महर्षि भुवनेंद्र की दी हुई दिव्य औषधि के प्रभाव से उत्पन्न उसका अपना बालक है।"

राजा के इस प्रकार मौन धारण करते ही बेताल शव के साथ गायब होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)
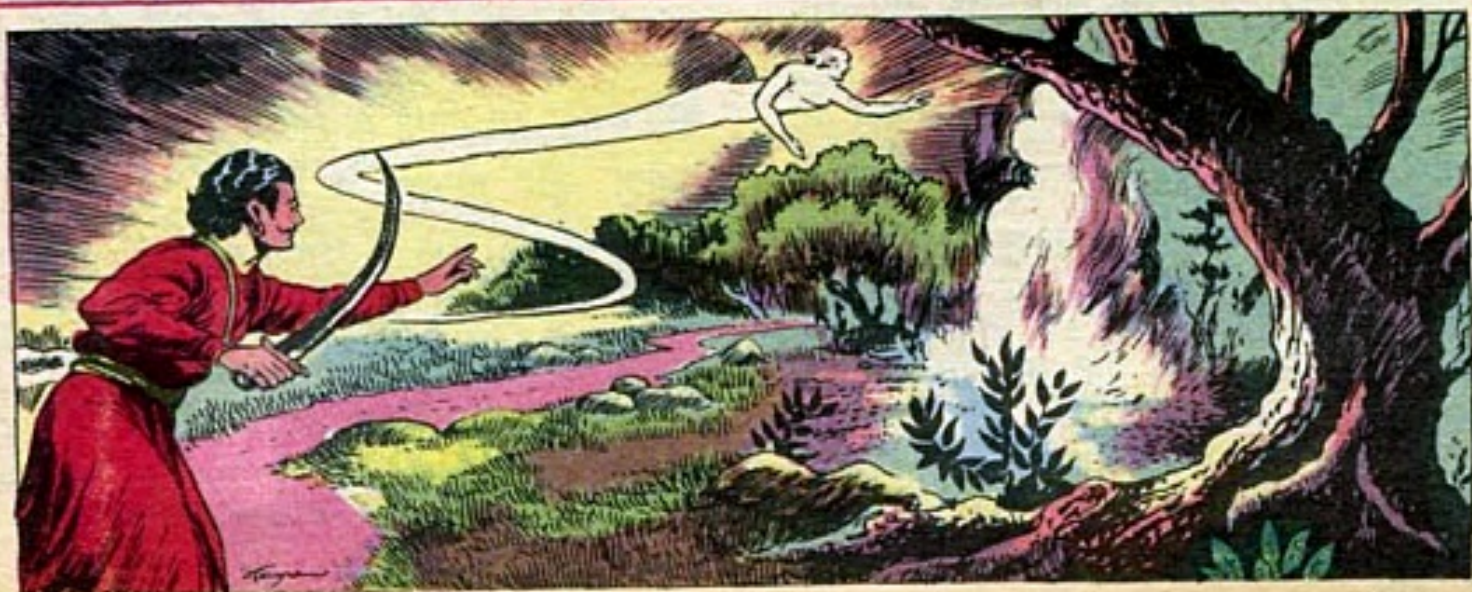
ब्याज का खाता

एक गाँव में रामदीन नाम का एक किसान रहता था। समय पर पानी न बरसने के कारण वह गाँव के महाजन से उधार लेता और जब फ़सल तैयार हो जाती तो सारी रक़म ब्याज के खाते में चुका देता। धीरे-धीरे वह निर्धन हो गया।

तब एक दिन उसने उस महाजन के यहाँ जाकर कहा, "साहूजी, आप सुन लीजिये! भविष्य में आप मुझसे एक कौड़ी भी वसूल नहीं कर सकते। जो कुछ मेरे पास था वह मोम की तरह गल चुका है। आप मुझे अपनी कमाई का रहस्य बताइये, मैं भी आराम से अपने दिन बिताना चाहता हूँ।"

"अरे रामदीन, धन तो वह राम ही दे सकता है!" महाजन ने उत्तर दिया।

किसान ने महाजन की बात पर विश्वास कर लिया और वह राम से धन माँग कर लाने के लिए तैयार हो गया। रास्ते के लिए उसकी पत्नी ने तीन रोटियाँ बना दीं।

रामदीन किसान अभी थोड़ी दूर ही गया था कि सामने से एक ब्राह्मण आ निकला। किसान ने अपनी पोटली खोलकर एक रोटी निकाली और उसे ब्राह्मण के हाथ में देकर पूछा, "भाई, मैं राम से मिलने जा रहा हूँ। अगर आपको रास्ता मालूम हो तो बताने की कृपा करें!"

ब्राह्मण ने रोटी ले ली। आसमान की तरफ़ दृष्टि डालकर चुपचाप अपने रास्ते चला गया।

रामदीन थोड़ी दूर और आगे बढ़ा। इस बार उसके सामने एक योगी आ निकला। उसने घुटने टेककर योगी को प्रणाम किया और पोटली में से एक रोटी निकाल कर योगी के हाथ में रख दी। फिर वह बोला, "महात्मन्, राम तक पहुँचने का मार्ग कौनसा है?"

योगी उसी तरह मौन धारण किये हुए अपने रास्ते चला गया। थोड़ी दूर और आगे जाने पर रामदीन को एक अत्यन्त गरीब आदमी दिखाई

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी

दिया। रामदीन को उस पर दया आ गयी। उसने तीसरी रोटी उसे देकर खाने को कहा। गरीब आदमी ने वह रोटी खा ली और रामदीन से पूछा, "भाई, तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"सुना है, राम से मुझे धन मिल सकता है। राम के पास तक पहुँचने का रास्ता मुझे कोई नहीं बता रहा। क्या राम का पता आप को मालूम है ?" रामदीन ने कहा।

गरीब ने मुस्करा कर कहा, "देखो, मैं ही राम हूँ। तुम्हें कहीं और जाने की ज़रूरत नहीं है। मैं एक शंख तुम्हें देता हूँ और इसके उपयोग की विधि तुम्हें समझा देता हूँ। तुम जो भी माँगोगे, यह शंख तुम्हारी इच्छा पूरी करेगा।"

उस आदमी ने रामदीन को शंख के उपयोग का सारा रहस्य समझा दिया और किसान रामदीन वह शंख लेकर अपने घर वापस आगया। उस दिन से रामदीन के घर में किसी प्रकार की कमी नहीं रही।

एक दिन गाँव का महाजन रामदीन के घर पहुँचा और उससे उसकी सम्पन्नता का सारा रहस्य जान लिया। जैसे ही एक दिन मौक़ा मिला, रामदीन का शंख चुराकर अपने घर ले गया। लेकिन उसके उपयोग का तरीका वह नहीं जानता था।

महाजन ने राम दीन के पास आकर कहा, "देखो, यह शंख मैं एक शर्त पर तुम्हें दे सकता हूँ। इस शंख से जितना लाभ तुम्हें हो, उससे दुगुना मुझे मिले। तुम्हें यह शर्त मंजूर है ?"

लाचार होकर रामदीन ने महाजन की बात मान ली। महाजन ने शंख उसे वापस कर दिया। अब शंख द्वारा जो कुछ उसे मिलता था, उससे दुगुना महाजन को मिल जाता था।

रामदीन महाजन को कुछ सबक सिखाने की बात सोचने लगा। आखिर एक दिन उसे एक उपाय सूझा। उसने अपने मन में मंत्र पढ़कर शंख बजाया और कहा, "मेरी एक आँख फूट जाये !" रामदीन की एक आँख फूट गयी लेकिन महाजन दोनों आँखों से जाता रहा। महाजन ने डर कर अपनी शर्त वापस ले ली और रामदीन को महाजन से छुटकारा मिल गया।

खज़ाने का राज़

कोसल देश के राजा सूर्यसेन सत्तर साल के हो चुके थे। एक तो वृद्धावस्था, साथ ही अस्वस्थ शरीर-उनकी स्थिति दिन पर दिन कमज़ोर होती जा रही थी। वे राजकाज में भी विशेष समय नहीं दे पा रहे थे। परिणाम यह हुआ कि सारे देश में अराजकता फैल गयी। चारों तरफ़ चोरी और डकैतियाँ शुरू हो गयीं। पड़ोसी देशों से भी ख़तरा पैदा हो गया। मगध देश का राजा वीरसिंह बहुत दिनों से कोसल देश को हथिया लेने की ताक में था। उसे इससे अच्छा अवसर और क्या मिलता ? उसने युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं।

राजा सूर्यसेन का पुत्र चंद्रसेन किसी दूसरे देश में विद्याध्ययन के लिए गया हुआ था। अभ्यास समाप्त हुआ तो वह अपने देश लौट आया। युवराज चंद्रसेन के व्यक्तित्व को देखकर मंत्री आशुशर्मा अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने एकान्त में राजा सूर्यसेन को यह सलाह दी, "महाराज ! युवराज चंद्रसेन का राज्याभिषेक कर राज्य का उत्तरदायित्व उन्हें दीजिए ! मुझे पूरा विश्वास है कि राज्य की बिगड़ी हुई हालत पर वे क़ाबू पा लेंगे।"

राजा सूर्यसेन मंत्री की बात सुनकर कुछ सोच में पड़ गये। उन्हें ऐसा लगा कि युवराज को राजनीति का अभी कोई अनुभव नहीं है। इस समय, जबकि राज्य में अराजकता फैली हुई है, नवयुवक राजपुत्र के हाथों में राज्य की बागडोर देना ख़तरे से ख़ाली न होगा। फिर भी, राजा ने अपने पुत्र के राजनीतिक ज्ञान और व्यावहारिक दक्षता एवं विवेक की जानकारी हासिल करनी चाही।

उन्होंने युवराज चंद्रसेन को बुलाकर कोसल देश की वर्तमान स्थिति का लेखा जोखा दिया और पूछा, "कुमार, तुम क्या सोचते हो ? हम अपने देश की स्थिति में सुधार कैसे ला सकते हैं ?"

रमेश मेहता

को बहुत यातनाएं झेलनी पड़ रही हैं, फिर भी ये तात्कालिक हैं। चोरियाँ हो रही हैं, डाके पड़ रहे हैं, फिर भी लूट का सारा माल, कम से कम, देश के अन्दर तो रह जाता है। चोर-डाकुओं को पकड़ कर हम उस संपत्ति को पुनः प्राप्त कर उसके मालिकों को तो सौंप सकते हैं न ?"

"तो तुम्हारी दृष्टि में बाहर का शत्रु ज़्यादा खतरनाक होता है ?" राजा सूर्यसेन ने पूछा।

"मेरा यही विचार है, पिताजी ! हर हालत में हमें देश की रक्षा का प्रबन्धं पहले करना चाहिए। मगध देश का राजा वीरसिंह हमारे देश पर आँख लगाये बैठा है। अगर वह हम पर हमला कर देता है और हम युद्ध में हार जाते है तो मगध के सैनिक हमारे राज्य की संपत्ति को पूरी तरह लूट लेंगे। हमारा सिंहासन शत्रु राजा के अधीन हो जायेगा।" युवराज चंद्रसेन ने कहा।

युवराज के परामर्श पर राजा सूर्यसेन ने क़िले की दीवारों की मज़बूती पर ध्यान दिया और उसके खर्च के लिए कोषाध्यक्ष बलभद्र को बुला भेजा। बलभद्र ने जब मरम्मत के खर्च के आँकड़े सुने तो वह चकरा गया। उसने निवेदन किया, "महाराज, इस वक्त राजकोष में जो धन है, वह मरम्मत के खर्च के लिए पर्याप्त नहीं है।"

राजा सूर्यसेन अपने अगले कार्य के बारे में विचार कर रहे थे कि तभी सेनापति विजयवर्मा

चंद्रसेन ने कुछ देर विचार किया, फिर बोला, "महाराज, सबसे पहले हमें पड़ोसी देशों के ख़तरों से सावधान होने की ज़रूरत है। इसके लिए आवश्यक है कि हम अपने क़िले की दीवारों को मज़बूत और सेना को संगठित कर लें।"

राजा सूर्यसेन का समाधान नहीं हुआ। उन्होंने पूछा, "हमारे देशवासी ही जब अराजकता फैला रहे हैं, तो उनके साथ हमारा क्या सलूक हो ? बाहरी शत्रुओं की अपेक्षा देश के भीतर के इन दुष्टों का ख़तरा कहीं ज़्यादा है न !"

चंद्रसेन ने जवाब दिया, "महाराज, यह सही है कि देश के अन्दर की अराजकता से जनता

अपने दो गुप्तचरों के साथ वहाँ उपस्थित हुआ और बोला, "महाराज, हमारे गुप्तचरों ने एक विचित्र समाचार दिया है। कोई एक महात्मा हैं जो एक महीने से हमारी राजधानी के किसी आश्रम में निवास कर रहे हैं। लोगों का कहना है कि ये महात्मा अनेक ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी हैं। उन्होंने अनेक लोगों को उन ख़ज़ानों का पता बताया है, जिन्हें उनके पूर्वजों ने कहीं गाड़ा था। इससे बहुत से लोगों का आर्थिक संकट दूर हुआ है। मेरी प्रार्थना है कि आप भी इन महात्मा का दर्शन करें। हो सकता है, हमारे देश का उपकार हो !"

राजा सूर्यसेन के मन में सेनापति विजयवर्मा की राजभक्ति में गहरा विश्वास था। राजा ने तत्काल रथ सज्जित करने की आज्ञा दी और गेरुए वस्त्रधारी महात्मा के समक्ष उपस्थित होकर अपनी समस्या का समाधान माँगा।

महात्मा ने आँख मूंद कर थोड़ी देर ध्यान किया। फिर आँखें खोलकर कहा, "राजन्, मैंने अपनी योग दृष्टि से निरीक्षण किया। इस समय किसी भी पड़ोसी राजा से आपको कोई ख़तरा नहीं है। रही धन की बात। तो आपके पूर्वजों ने क़िले के मुख्य द्वार के दोनों ओर की दीवारों के नीचे सौ कलशों में सोना गाड़ रखा है। आप उसे खोद कर निकाल लें, आपकी समस्या हल हो जायेगी।"

राजा सूर्यसेन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने महात्मा को प्रणाम किया और अपने राजभवन में लौट आये।

युवराज चंद्रसेन अपने पिता के मुँह से सारी बातें सुनीं तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा, "पिताजी, अगर उस महात्मा की बात सच भी हो, तो भी वर्तमान खतरे को देखते हुए क़िले की दीवारें तुड़वाना बुद्धिमानी नहीं होगी। जहाँ पर ख़ज़ाना होने की बात उसने बतायी है, वहाँ क़िले की दीवारें काफ़ी मज़बूत हैं। हमारे राज्य में क्या केवल क़िले की दीवारों के नीचे ही ख़ज़ाना है, और कहीं नहीं ? आप मुझे उस साधु का परीक्षण करने दीजिए ! मैं आपसे एक हफ़्ते का समय चाहता हूँ।"

राजा ने युवराज की बात मान ली।

राजा सूर्यसेन के दरबार में एक विदूषक था,

लगाता हूँ, आज वह समय बीत गया है। तुम कल सुबह आओ, मैं अवश्य ही तुम्हारी मदद करूँगा।"

विदूषक मणिभद्र ने सारी बातों की सूचना युवराज को दी। रात को युवराज विदूषक के घर पहुँचा और दोनों सावधानी से किसी घटना का इन्तज़ार करने लगे।

आधी रात के समय उन्होंने देखा कि दो आदमियों ने घर के पिछवाड़े की दीवार लांघकर प्रवेश किया और वे पश्चिमी भाग में एक आम के पेड़ के नीचे गड्ढा खोदने लगे। उन्होंने कोई चीज़ उस गड्ढे में छिपायी और गड्ढा भर कर चले गये। ये दोनों आदमी और कोई नहीं, वे ही दो गुप्तचर थे, जिन्हें लेकर सेनापति राजा के पास पहुँचा था।

उन दोनों के जाते ही युवराज और विदूषक ने उस जगह खोदकर देखा, एक तांबे के बरतन में सोने के सिक्के भरे हुए थे। उन्होंने वह बरतन उसी तरह गाड़ दिया और उस गड्ढे में मिट्टी भर दी।

सुबह हुई। विदूषक साधु के पास पहुँचा। साधु ने विदूषक से कहा, "वत्स, मैंने अपनी योगदृष्टि से देखकर पता लगाया है, तुम्हारे घर के पिछवाड़े में पश्चिम दिशा की तरफ़ आम का एक पेड़ है। उसके थाले के नीचे खज़ाना है। तुम उसे खोदकर निकाल लो और अपनी मुसीबतों से मुक्त हो जाओ!"

विदूषक ने लौटकर सारी बातें युवराज को बतायीं। युवराज ने मणिभद्र को साथ लिया

नाम था मणिभद्र। युवराज ने उससे गुप्त रूप से बातचीत की और उसके मकान के पिछवाड़े के पूर्वीभाग में एक हज़ार सोने के सिक्के गड़वा दिये। योजना के अनुसार विदूषक साधु के पास गया और साष्टांग प्रणाम करके बोला, "स्वामिन्, इस वक्त मैं बड़े कठिन आर्थिक संकट में फँसा हुआ हूँ। एक हज़ार सोने के सिक्के हों तो मैं अपनी मुसीबत से छुटकारा पा सकता हूँ। आपने बहुत से लोगों को उनके गड़े खज़ानों का पता बताया है। मुझ पर भी मेहरबानी करें और मेरे घर के खज़ाने का पता बता कर मेरा उद्धार करें।"

साधु थोड़ा विचार-मग्न होगया, फिर बोला, "वत्स, मैं जो योगदृष्टि से खज़ानों का पता

और अपने पिता के पास पहुँचा, सारा समाचार सुनाकर कहा, "पिताजी, अगर सचमुच ही वह साधु ऋद्धि-सिद्धि रखता, तो वह आदमियों को भेजकर मणिभद्र के घर में इस तरह धन न गाड़ता और हमारे द्वारा गाड़े गये धन का ही पता बताता। निश्चय ही वह शत्रु का गुप्तचर है। हमारा सेनापति अपने कुछ लोगों के साथ उससे मिला हुआ है। ये लोग जहाँ-तहाँ धन गाड़कर हमारी भोली प्रजा को धोखा दे रहे हैं। खज़ाने का लोभ दिलाकर क़िले के मुख्य द्वार की मज़बूत दीवारों को तुड़वाना, यह निश्चय ही मगध राजा वीरसिंह के षडयंत्र का एक हिस्सा है।"

सब सुनकर राजा सूर्यसेन के मन में सेनापति विजयवर्मा की राजभक्ति के सम्बन्ध में थोड़ा सन्देह अवश्य हुआ, फिर भी उन्होंने धैर्य से काम लेना उचित समझा।

वे युवराज से बोले, "हमारे राज्य में साधु बनकर रह रहा यह विदेशी गुप्तचर अपने प्रपंचों से जिस तरह प्रजा को धोखा दे रहा है, हो सकता है, वैसे ही इसने सेनापति को भी अपने धोखे में डाल लिया हो? सेनापति विजयवर्मा की राजभक्ति पर संदेह करने को मेरा मन नहीं मानता।"

"महाराज, तब हम आज रात को एक उपाय करेंगे। छद्मवेश में उस आश्रम में जायेंगे और अगर वहाँ हमें साधु के दर्शनार्थी लोगों में अपने गुप्तचर दिखाई दिये, तो उन्हें बंदी बनायेंगे। इसके बाद हम उनसे सही बात का पता लगा सकते हैं।" युवराज ने सुझाव दिया।

राजा ने युवराज की बात मान ली।

युवराज चंद्रसेन अपने पिता के साथ वेश बदलकर और दस सैनिकों को साथ लेकर उसी रात साधु के निवास-स्थान के लिए रवाना हो गये। उन्होंने सैनिकों को आश्रम के निकट ही पेड़ों के झुरमुट में खड़ा कर दिया और स्वयं एक ऐसी खिड़की के पास छिपकर खड़े हो गये, जहाँ से वे अन्दर की गतिविधि पर पूरी तरह से नज़र रख सकते थे।

कुछ देर बीती। अभी आधी रात नहीं हुई थी कि सेनापति अपने दो अनुचरों के साथ वहाँ पहुँचा। साधु ने सेनापति को देखकर पूछा,

"सेनापति, राजा ने मेरी योगदृष्टि पर विश्वास कर लिया है न ?"

"हाँ, कर लिया है ! विदूषक के पिछवाड़े भाग में खज़ाना मिलने के कारण अन्य राजकर्मचारी भी आपकी महिमा पर विश्वास करने लगे हैं। एक-दो दिन ही जा रहा है, मुझे तो पक्का भरोसा है कि राजा सूर्यसेन क़िले के मुख्य द्वार की दीवारें तुड़वा देंगे और आपके द्वारा बताये गये खज़ाने की खोज करेंगे ।" सेनापति चालाकी भरे स्वर में बोला ।

इतना सुनना था कि राजा ने सैनिकों को इशारा किया । सब मिलकर साधु, सेनापति और उनके अनुचरों पर टूट पड़े। कुछ ही देर में उन्होंने समर्पण कर दिया । राजा ने उन्हें बन्दी बनाया और कारागार में डाल दिया ।

युवराज चंद्रसेन की कुशलता और सूझबूझ पर राजा के हृदय का बोझ उतर गया। उन्होंने मंत्री आशुशर्मा को बुलाकर कहा, "मंत्रिवर, आपका विचार उत्तम था। युवराज चंद्रसेन में राजा बनने की पूर्ण योग्यता है। आप उनके राज्याभिषेक की तैयारियाँ कीजिए !"

राजा कुछ क्षण रुककर फिर बोले, "अगर हम सेनापति और उस साधु के जाल में फँसकर क़िले की दीवारें तुड़वा देते तो अनर्थ हो जाता। मगध का राजा वीरसिंह हमें असुरक्षित देख निश्चय ही हमला कर देता और हम भारी संकट में पड़ जाते ।"

एक सप्ताह बाद बड़ी धूम धाम से युवराज चंद्रसेन का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। राजा का पद ग्रहण करते ही चंद्रसेन ने अपने अनुभव से सबक लिया और यह घोषणा की कि आगे से गुप्तचर विभाग सेनापति के अधीन नहीं, राजा के अधीनस्थ रहकर काम करेगा ।

मगध देश के राजा का षडयंत्र विफल हो गया। उसने युद्ध की तैयारियाँ बंद कर दीं ।

राजा सूर्यसेन को अपने पुत्र की सामर्थ्य और कुशलता का परिचय मिल चुका था। पुत्र पर सारे दायित्व सौंपकर उन्होंने अपना शेष जीवन आराम के साथ धर्मकार्यों को करते हुए बिताया ।

सोने का मोर

जब काशी राज्य पर ब्रह्मदत्त का शासन था, बोधिसत्व का जन्म एक मोर के रूप में हुआ। यह मोर अन्य साधारण मोरों जैसा नहीं था। इसकी काया सुवर्ण की थी और यह अनुपम सुन्दर था। यह दण्डकारण्य में विचरण किया करता था। एक दिन रानी को सोने का यह मोर सपने में दिखाई दिया। उसने राजा से अनुरोध किया, "महाराज़, आप इस सोने के मोर को अवश्यय ही मंगा दें।"

राजा ने मोर के बारे में मंत्रियों से पूछा। मंत्रियों ने कहा कि इस मोर के बारे में अवश्य ही नगर के ब्राह्मण जानते होंगे। ब्राह्मणों से पूछा तो उन्होंने जवाब दिया कि इसकी जानकारी शिकारियों को होगी।

राजा ने एक शिकारी को बुलाकर कहा, "अगर तुम उस सोने के मोर को ज़िन्दा पकड़ लाओगे तो तुम्हें भारी इनाम दिया जायेगा।"

शिकारी ने जंगल में जाल बिछा दिये। सात साल बीत गये पर मोर जाल में नहीं फँसा। इस बीच शिकारी की मौत हो गयी और मोर की कामना को मन में ले रानी भी मर गयी।

"सपने में दिखाई दिये उस सोने के मोर के लिए मेरी रानी घुलकर मर गयी है!" —इस विचार से राजा को क्रोध आ गया। उसने क़िले के मुख्य द्वार पर इस आशय का सूचना-पट लटकवा दिया, "दण्डकारण्य में सोने का मोर विचरण करता है। जो भी मनुष्य उसका मांस खायेगा, वह बुढ़ापे और मौत से बचा रहेगा।"

कुछ दिनों बाद राजा की भी मृत्यु होगयी, तब युवराज ने एक और शिकारी को सोने का मोर पकड़ लाने की जिम्मेदारी सौंपी। लेकिन बरसों बीत गये, कोई सफलता न मिली। इस तरह उस राजवंश की छह पीढ़ियाँ गुज़र गयीं।

सातवीं बार जो राजा सिंहासन पर बैठा, उसने भी उस सूचना-पट को पढ़ा और सोने का मोर पकड़ लाने की जिम्मेदारी एक शिकारी को

सौंपी। भाग्य से उस शिकारी को सफलता मिली और उसने उस मोर को पकड़ कर काशी के राजा को दे दिया। सोने के उस मोर को देखकर राजा के मन में बड़ा आश्चर्य पैदा हुआ। उसके हृदय में मोर के लिए सहज आदरभाव का उदय हुआ और उसने उसके लिए अपनी बगल में एक ऊँचा आसन लगवाया।

मोर रूप में जन्मे बोधिसत्व ने राजा से पूछा, "राजन्, आपने मुझे पकड़वा कर यहाँ क्यों मँगवाया है ?"

"लोग कहते हैं कि तुम्हारा मांस खाने पर लोग बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्त हो जायेंगे !" राजा ने जवाब दिया।

"इसका अर्थ तो यह है कि आप मेरा घात करेंगे !" बोधिसत्व ने कहा।

"हाँ, यही बात है !" राजा बोला।

"राजन् आप पागल हैं क्या ? मैं स्वयं ही मृत्यु से परे नहीं हूँ। ऐसी स्थिति में मेरा मांस खानेवाले लोग बुढ़ापे और मृत्यु से परे कैसे हो सकते हैं ?" बोधिसत्व ने पूछा।

"तुम्हारी देह की छाया सोने के रंग की है। लोगों का कहना है कि तुम्हारा मांस खाने वाले भी सोने के रंग के हो जाते हैं और मृत्यु से बच जाते हैं।" राजा ने कहा।

"राजन्, आप सुनिये, कैसे मैंने इस सुवर्णिम आभा को प्राप्त किया ! प्राचीन काल में मैं आपके इस काशी राज्य का राजा था। मैंने न्यायपूर्वक शासन किया और सदैव धर्म की रक्षा की। परिणाम स्वरूप मैं सोने की देह लेकर मोर रूप में जन्मा।" बोधिसत्व ने कहा।

बोधिसत्व की बात सुनकर राजा को बड़ा विस्मय हुआ। उसने पूछा, "क्या धर्मपूर्वक शासन करने का फल है यह ? प्रमाण दो !"

"प्रमाण है, राजन् ! जब मैं राजा था तो एक नवरत्नखचित रथ पर विहार किया करता था। वह रथ उद्यान-वन में एक सरोवर के पास गड़ा हुआ है !" बोधिसत्व ने कहा।

राजा ने सरोवर के पास की भूमि खुदवायी तो वह दिव्य रथ निकल आया। राजा ने बोधिसत्व को अपना गुरु स्वीकार किया।

हमारी नदियाँ

गंगा-२

अयोध्या के राजा सगर ने एक बार राजसूय यज्ञ किया। जैसी कि इस यज्ञ की रीति थी, एक बलिष्ठ और अलंकृत अश्व पर विजय-पताका बाँधकर सगर के साठ हज़ार पुत्र उसकी रक्षा में निकल पड़े। यज्ञ का अश्व अनेक देशों से होकर आगे बढ़ता गया।

एक दिन अश्व के रक्षकों को असावधान देख इंद्र राक्षस के रूप में आया और अश्व को चुरा ले गया। उसने उसे ले जाकर पाताल लोक में स्थित कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया।

महाराज सगर के सारे पुत्र अश्व की खोज में चारों दिशाओं में फैल गये। जब वे पाताल लोक में पहुँचे तो उन्होंने यज्ञ के अश्व को कपिल मुनि के आश्रम में बँधे देखा। उन्होंने सोचा कि कपिल मुनि ने उनका अश्व चुराया है। उन्होंने बड़े असहिष्णुभाव से निर्दोष मुनि का अपमान किया।

सगर के पुत्रों की उद्दण्डता देख कर कपिल मुनि को क्रोध आगया। उन्होंने शाप दिया, "ये घमण्डी सगर-पुत्र जलकर भस्म हो जायें !" उसी क्षण सब राजकुमार जल कर भस्म की ढेरी बन गये ।

अनेक वर्षों बाद सगर के पौत्र अंशुमान ने कपिल मुनि से अपने पिताओं को जीवित करने की प्रार्थना की। कपिल ने उसे बताया कि ब्रह्मा के कमण्डलु का पवित्र गंगाजल अगर भस्मराशि का स्पर्श कर दे तो सगर-पुत्र पुनः जीवित हो सकते हैं ।

कुछ वर्ष और निकले। सगर के प्रपौत्र भगीरथ ने भस्म की ढेरी बन गये अपने पूर्वजों को जीवित करने का संकल्प किया। भगीरथ ने ब्रह्मा के अनुग्रह के लिए कठिन तपस्या की। ब्रह्मा प्रसन्न हुए और अपने कमण्डलु के गंगाजल को छोड़ने के लिए तैयार हो गये ।

गंगा के तीव्र प्रवाह को झेलने की शक्ति पृथ्वी में न थी। भगीरथ ने समझ लिया कि इस वेग को केवल शिव ही धारण कर सकते हैं। भगीरथ ने शिव को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना की। शिव ने भगीरथ की प्रार्थना स्वीकार कर ली और गंगा को अपने सिर की जटाओं में उतार लिया।

शिव की जटाओं का अवलम्ब ले गगा पृथ्वी पर उतर पड़ी। इसके बाद भगीरथ आगे बढ़ता गया और उसका अनुसरण कर गंगा बहती चली गयी। चारों तरफ़ की भूमि शस्य-श्यामला हो उठी।

इसके बाद भगीरथ गंगा के प्रवाह को पाताल तक ले गया। साठ हज़ार पूर्वजों की भस्म-राशियां गंगाजल में डूब गयीं। परिणाम स्वरूप सगर के वे साठ हज़ार पुत्र जीवित हो उठे। भगीरथ का भगीरथ-प्रयत्न सफल हुआ।
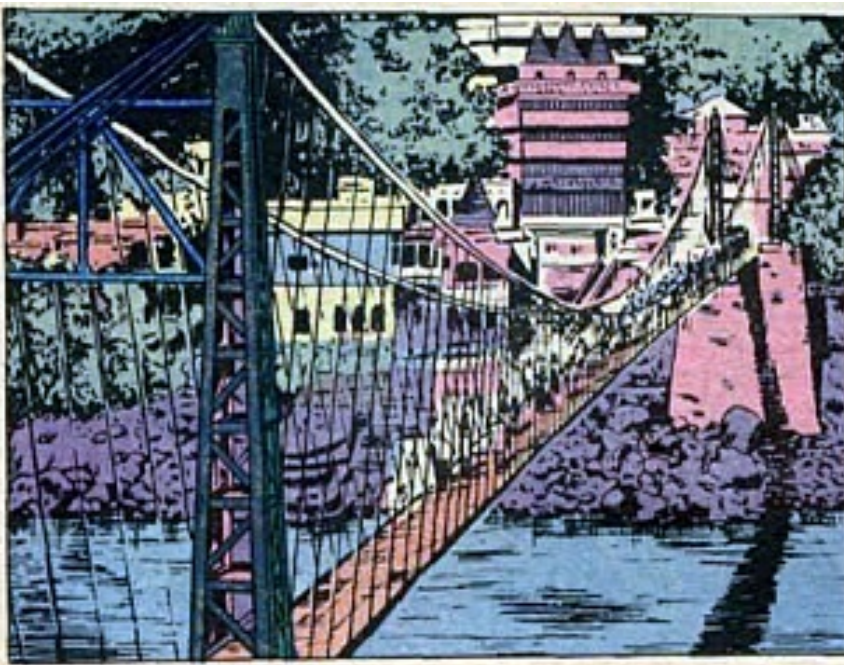
गंगा हमारे देश की सबसे पवित्र नदी मानी जाती है। गंगा ने गोमुख में रूप प्राप्त किया, गंगोत्री में उद्भूत हुई और प्राचीन पवित्र क्षेत्र के रूप में विख्यात ऋषिकेश क्षेत्र से होकर मैदानों में बहने लगी।

गंगानदी के तट पर बसे असंख्य पुण्यतीर्थों में हरिद्वार और वाराणसी प्रमुख हैं। ये दोनों क्षेत्र अत्यन्त प्राचीन भी हैं। दीर्घकाल से ये तीर्थ भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं।

गंगानदी के तट पर बसा एक और प्रमुख नगर कलकत्ता है। इस प्रदेश में इस नदी को हुगली के नाम से पुकारते हैं। कलकत्ता से यह नदी अनेक शाखाओं में बंटकर बंगाल-बाघों के केंद्र बने सुन्दरबन के जंगलों से होती हुई सागर में विलीन हो जाती है।

सच्चा वैद्य

वेदपुरी का राजा भीमेश्वर अचानक एक विचित्र बीमारी का शिकार हो गया। उसके सारे शरीर में काले दाग पड़ गये। दरबारी वैद्यों ने अनेक प्रयत्न किये, लेकिन वे राजा को बीमारी से मुक्त न कर सके।

वेदपुरी के एक छोटे से मुहल्ले में एक वैद्य रहता था, नाम था सीताराम। उसे भी राजा की बीमारी की ख़बर मिली। बीमारी थी तो अनोखी ही, लेकिन सीताराम इसका इलाज जानता था। उसके परिवार में वैद्य का पेशा पुश्तैनी था और उसके पिता ने उसे इस बीमारी का इलाज सिखाया था।

सीताराम ने इलाज के लिए आवश्यक दवाइयाँ तैयार कीं और राजा के दर्शन के लिए चल पड़ा।

सबसे पहले सीताराम की मुलाक़ात राजवैद्यों से हुई। उन्होंने उससे अनेक प्रश्न पूछे, सीताराम ने उनका यथोचित उत्तर दिया। राजाश्रय प्राप्त उन वैद्यों ने समझ लिया कि सीताराम चिकित्सा की विद्या में पारंगत वैद्य है।

सीताराम से मिलकर उनके मन में यह भय पैदा हुआ कि अगर उसकी दवाइयों से राजा की बीमारी दूर होगयी तो वे सब राजा की दृष्टि में अयोग्य साबित हो जायेंगे। दरबार में उनका कोई मान नहीं रहेगा। हो सकता है उनका राजाश्रय ही बंद कर दिया जाये।

सब विचार कर राजवैद्यों ने सीताराम से कहा, "हम लोगों ने गुरुकुलों में प्रवेश लेकर शैशव काल से ही चिकित्सा-शास्त्र का अभ्यास किया है। पूर्ण ज्ञान के बाद भी जब हम लोगों के इलाज से राजा की बीमारी दूर नहीं हुई तो क्या तुम्हारे इलाज से दूर होगी? इसकी कल्पना भी मत करो! हमें तो यह डर है कि कहीं तुम्हारे इलाज से महाराज की बीमारी ख़त्म होने के बदले बढ़ न जाये। अगर ऐसा हुआ तो इसके

राकेश शर्मा

जिम्मेदार हम लोग ठहराये जायेंगे। इसलिए तुम इसी वक्त बिना विलम्ब किये अपने घर लौट जाओ और राजा के दर्शनों के लिए आइन्दा कभी मत 'आना

सीताराम विवश होकर अपने घर लौट आया। लेकिन वह चार-पाँच दिन में एक बार राज महल की तरफ़ अवश्य जाता था कि शायद राजवैद्य अपना विचार बदल कर उसे राजा से मिला दें। पर हर बार वैद्य उसके साथ और बुरा व्यवहार करते और उसे डाँट कर भगा देते ।

एक बार सीताराम राजमहल से घर लौट रहा था, तो उसने देखा कि एक धर्मशाला के चबूतरे पर एक रोगी बैठा हुआ है। उसका शरीर काले दाग़ों से भरा हुआ था। उसकी बीमारी वही थी, जिससे राजा बुरी तरह से ग्रस्त था ।

सीताराम ने उस रोगी-का इलाज शुरू किया और एक महीने के अन्दर उसे पूरी तरह निरोग कर दिया ।

एक दिन शाम के समय राजा भीमेश्वर अपने दो अंगरक्षकों के साथ उद्यान में जा रहा था, तब पास की धर्मशाला के चबूतरे से उतर कर एक आदमी ने उसे प्रणाम किया। उसे देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा ने अपने अंगरक्षकों से पूछा, "क्या यह वही आदमी है जो चबूतरे पर सिकुड़ा हुआ पड़ा रहता था ? उसके तो सारे शरीर में काले दाग़ थे ! यह इतनी जल्दी स्वस्थ कैसे हो गया ? तुम इसे मेरे पास बुलाकर लाओ !"

अंगरक्षकों ने राजा की आज्ञा का पालन किया और उस आदमी को राजा के पास ले आये। राजा ने उसके रोग और उसके निदान के बारे में पूछा तो उस आदमी ने सीताराम वैद्य का जिक्र किया ।

राजा उस दिन रात को वेश बदल कर सीताराम से मिलने गया। सीताराम ने उसकी बीमारी की जाँच करके इलाज शुरू कर दिया। बीस दिन के अन्दर राजा पूर्ण स्वस्थ हो गया। उसने सीताराम के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और वहाँ से चलने को हुआ। तब सीताराम ने राजा से कहा, "महाशय, यह बीमारी बड़ी

अनोखी है। लाखों में से कोई एकाध ही ऐसा अभागा है, जो इस बीमारी का शिकार हो जाता है। मैंने ऐसे कई लोगों को निरोग किया है, लेकिन अपने ही देश के राजा का इलाज कर सकूँ, ऐसा कोई रास्ता मुझे दिखाई नहीं देता।"

"यह कौनसी बड़ी बात है। तुम राजा से मिल कर इलाज आरंभ कर दो!" राजा ने सीताराम से कहा।

सीताराम ने अपनी सारी आपबीती सुनादी कि किस तरह राजवैद्य उसके मार्ग का रोड़ा बने हुए हैं और कितनी ही बार उसका अपमान कर चुके हैं।

राजा को राजवैद्यों की कपट बुद्धि का पता लगा तो उसे बड़ा सोच हुआ। क्या इन वैद्यों को मेरे शरीर से भी बढ़कर अपने पद प्रिय लगते हैं? वे खुद तो मेरी बीमारी दूर कर न पाये, और सीताराम कहीं सफल होकर प्रमुख राजवैद्य न बन जाये, इसलिए उसे भी मौक़ा न दिया। कितना स्वार्थ भरा है उन लोगों में?

राजा ने बहुत सोच-समझकर सीताराम को प्रमुख राज वैद्य बनाने का निर्णय कर लिया। सीताराम से कहा, "सीताराम, मैं ही राजा भीमेश्वर हूँ। तुमने मुझे ही निरोग किया है!" यह कहकर राजा ने अपने को राजवेश में प्रकट किया और कहा, "कल सुबह मेरे राज्य के कुछ प्रमुख अधिकारी तुम्हें राजकीय सम्मान से मेरे पास लायेंगे। मैं स्वयं तुम्हारा स्वागत करूँगा और तुम्हें प्रमुख राजवैद्य का पद प्रदान करूँगा। इसके बाद तुम्हें इस छोटे से मुहल्ले के जीर्ण मकान में निवास करने की कोई आवश्यकता

नहीं रहेगी ।"

सीताराम ने राजा को विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा, "महाराज, आप मुझे जो पद देना चाहते हैं, उसे मैं अस्वीकार करता हूँ । आप मुझे क्षमा करें । मुझे इस जीर्ण मकान में निवास करने में ही सुख और संतोष है ।"

राजा ने विस्मित होकर पूछा, "मैं तुम्हें जो पद, मान और धन देना चाहता हूँ, क्या उससे तुम्हें सुख और संतोष प्राप्त न होगा ?"

"महाराज, कुछ ऐसा ही है ! यदि मैंने एक बार राजवैद्य का पद स्वीकार कर लिया तो मैं आपको और राजपरिवार को छोड़कर अन्य किसी के इलाज का अवसर प्राप्त नहीं कर सकूँगा । ऐसी हालत में, देश के गरीब रोगी मेरे इलाज से वंचित हो जायेंगे । मैं पद और धन के लोभ में आकर अपनी विद्या को केवल कुछ विशिष्ट लोगों तक ही सीमित नहीं कर सकता ।" सीताराम ने अपनी बात स्पष्ट कर दी।

सीताराम की बातों में राजा को सच्चाई प्रतीत हुई । उसने कुछ देर मौन रहकर विचार किया, फिर बोला, "सीताराम, तुम वाक़ई सच्चे वैद्य हो । तुम इस देश के नागरिक हो, इसका मुझे गर्व है । मैं तुम्हें ऐसा अवसर प्रदान करना चाहता हूँ, जिससे तुम अधिक से अधिक लोगों को रोगमुक्त कर सको । हर महीने खज़ाने से तुम्हारे पास एक निश्चित रक़म पहुँचा करेगी । उस राशि से तुम जहाँ भी चाहो, धर्म औषधालयों की स्थापना करो और बीमार लोगों को अधिक से अधिक मदद पहुँचाओ । क्या मेरा यह प्रस्ताव तुम्हें स्वीकार है ?"

"महाराज, इससे बढ़कर मुझे और क्या चाहिए ? बहुत समय से मेरी यह इच्छा थी कि मैं औषधालय खोलूँ, लेकिन धन के अभाव में मेरी यह इच्छा मन की मन में ही दबी रह गयी । आपने जो सहायता देने का आश्वासन दिया है, उसके लिए मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।" सीताराम ने कहा ।

राजा ने राजभवन लौटकर अपने वचन को पूरा किया । सीताराम अनेक बरसों तक अपने इलाज से लोगों को आरोग्य-दान देता रहा ।

धर्मदेवी

कुण्डल देश का राजा सत्यानन्द बड़ा ही धर्मात्मा था। धर्म की रक्षा के लिए वह अपने प्राणों को भी त्यागने के लिए तैयार रहता था। धर्माचरण में वह पूरी तरह निष्पक्ष था। जैसा वह अपने परिवार और मित्रों के प्रति था, वैसा ही पक्षपातरहित अपनी प्रजा के लिए था। उसकी कुलदेवता 'धर्मदेवी' के नाम से जानी जाती थीं।

धर्मदेवी की अर्चना के बिना राजा कोई काम नहीं करता था।

सत्यानन्द के एक ही पुत्र था, श्रवणानन्द। राजा सत्यानन्द वृद्ध हो चुका था, इसलिए उसने युवराज श्रवणानन्द का राज्याभिषेक करना उचित समझा।

श्रवणानन्द राजा बन गया। अभी थोड़ा ही समय बीता था कि सत्यानन्द ने शैया पकड़ ली। अन्तिम समय निकट जान उसने अपने पुत्र को बुलाया और कहा, "पुत्र श्रवण, धर्म के लिए हमारे पूर्वजों ने कभी अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की। तुम भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करना। धर्म का आचरण करते हुए अगर तुम्हारे सामने कभी कोई जटिल समस्या आजाये तो तुम धर्मदेवी का मार्गदर्शन प्राप्त करना। हमारी कुलदेवी का मंदिर राजधानी नगर के दक्षिणी छोर पर है। धर्मदेवी तुम्हारी हर समस्या का समाधान करेंगी।"

अपने पिता के देहावसान के बाद श्रवणानन्द ने धर्मपथ पर चलकर धर्मात्मा राजा के रूप में महान यश प्राप्त किया।

कई वर्ष सुख-शांतिपूर्वक बीत गये। लेकिन, एकबार श्रवणानन्द के सामने धर्मसम्बन्धी एक समस्या खड़ी हो गयी।

श्रवणानन्द की पुत्री मालती एक छोटे से सामन्त राजपुत्र के साथ विवाह करना चाहती थी। वह अपनी पुत्री की इच्छा का तिरस्कार न कर सका। पर इस वंश की परम्परा के अनुसार

विजय शुक्ल

राजकुमारी का विवाह किसी देश के समान कुलवाले युवराज के साथ होना चाहिए था। ऐसा न करने से राजा को कुल की मर्यादा के अतिक्रमण का दोष लगता। अगर वह कुल-मर्यादा की रक्षा को महत्व देता है तो अपनी पुत्री के सुख की बलि देनेवाला बन जाता है।

इस समस्या का हल कैसे किया जाये ? इस पर श्रवणानन्द गंभीरतापूर्वक विचार करने लगा। उसे अपने पिता के अंतिम वचन याद आये। वह उसी समय धर्मदेवी के मंदिर में गया और देवी को प्रणाम करके उसने अपनी समस्या उसके सामने रखी।

दूसरे ही क्षण धर्मदेवी की प्रतिमा विलक्षण कांति से दमक उठी। फिर प्रतिमा के भीतर से यह आवाज़ आयी, "श्रवण, तुम पहले पिता हो या पहले राजा हो ?"

"देवी, मैं राज्यभिषेक के समय विवाहित था। उस समय मालती छोटी सी बालिका थी।" राजा ने उत्तर दिया।

इसके बाद प्रतिमा के भीतर की ज्योति लीन होगयी। श्रवणानन्द ने पुनः देवी को प्रणाम किया और अपने महल में लौट आया। इसके बाद उसने. एक शुभ मुहूर्त निकालकर सामन्त राजपुत्र के साथ राजकुमारी मालती का विवाह संपन्न कर दिया।

फिर कुछ काल निकला। तब एक दिन श्रवणानन्द के सामने बड़ी गंभीर समस्या आ गयी। राजकुमार नागानन्द गुरुकुल में विद्या-अध्ययन के लिए गया हुआ था। वह अपने एक सहपाठी के साथ खड्ग-युद्ध का अभ्यास कर रहा था कि उसका खड्ग चूक कर सहपाठी के दायें हाथ पर गिर पड़ा और हाथ कट गया। वह विराग नाम के ब्राह्मण का पुत्र धर्मवीर था।

विराग ने राजसभा में प्रवेश कर राजा से निवेदन किया, "महाराज, राजपुत्र नागानन्द ईर्ष्यालु है। उसने मेरे बेटे का दायाँ हाथ इसलिए काट दिया है, ताकि वह खड्ग विद्या में उससे श्रेष्ठ न बन जाये। हमारी दण्डनीति के अनुसार 'वार का बदला वार' है। आप अपने पुत्र का दायाँ हाथ काटे जाने की आज्ञा दें और

अपने 'धर्मात्मा' होने के यश को पूर्ण रूप से सार्थक करें !"

श्रवणानन्द को कुछ न सूझा । उसने निर्णय के लिए एक दिन की माँग की और उसी समय राजसभा विसर्जित करके धर्मदेवी के मंदिर में पहुँचा ।

उसने देवी को प्रणाम किया और देवी के सामने अपनी समस्या रखी ।

सारा मंदिर प्रकाश से जगमगा उठा । धर्मदेवी की गंभीर वाणी सुनाई दी, "श्रवण, तुम्हारे देश की दण्डनीति कहती है, 'वार का बदला वार' है । उसमें किसी हालत में कलंक नहीं आना चाहिए । पर यह बात भी सत्य है कि राजपुत्र ने वार जानबूझकर नहीं किया । अब ऐसा करो, विराग से कहो कि नागानन्द ने अपने दायें हाथ से धर्मवीर का दायाँ हाथ काटा है तो धर्मवीर अपने उसी हाथ से नागानन्द का दायां हाथ काट दे ।... इससे राजधर्म की रक्षा भी होगी और राजपुत्र को अनावश्यक हानि नहीं उठानी पड़ेगी ।"

श्रवणानन्द ने अपना फ़ैसला सुना दिया । सभी सभासदों ने प्रसन्न होकर हर्षध्वनि की । विराग भी कुछ विरोध न कर सका और चुपचाप राजसभा से चला गया ।...

कुण्डल देश का पड़ोसी राज्य वैशाली था । वैशाली का राजा वसन्तसेन श्रवणानन्द का बचपन का मित्र था । एक बार वह श्रवणानन्द से मिलने आया और उसने रात की दावत के बाद श्रवणानन्द से शतरंज खेलने की इच्छा प्रकट की ।
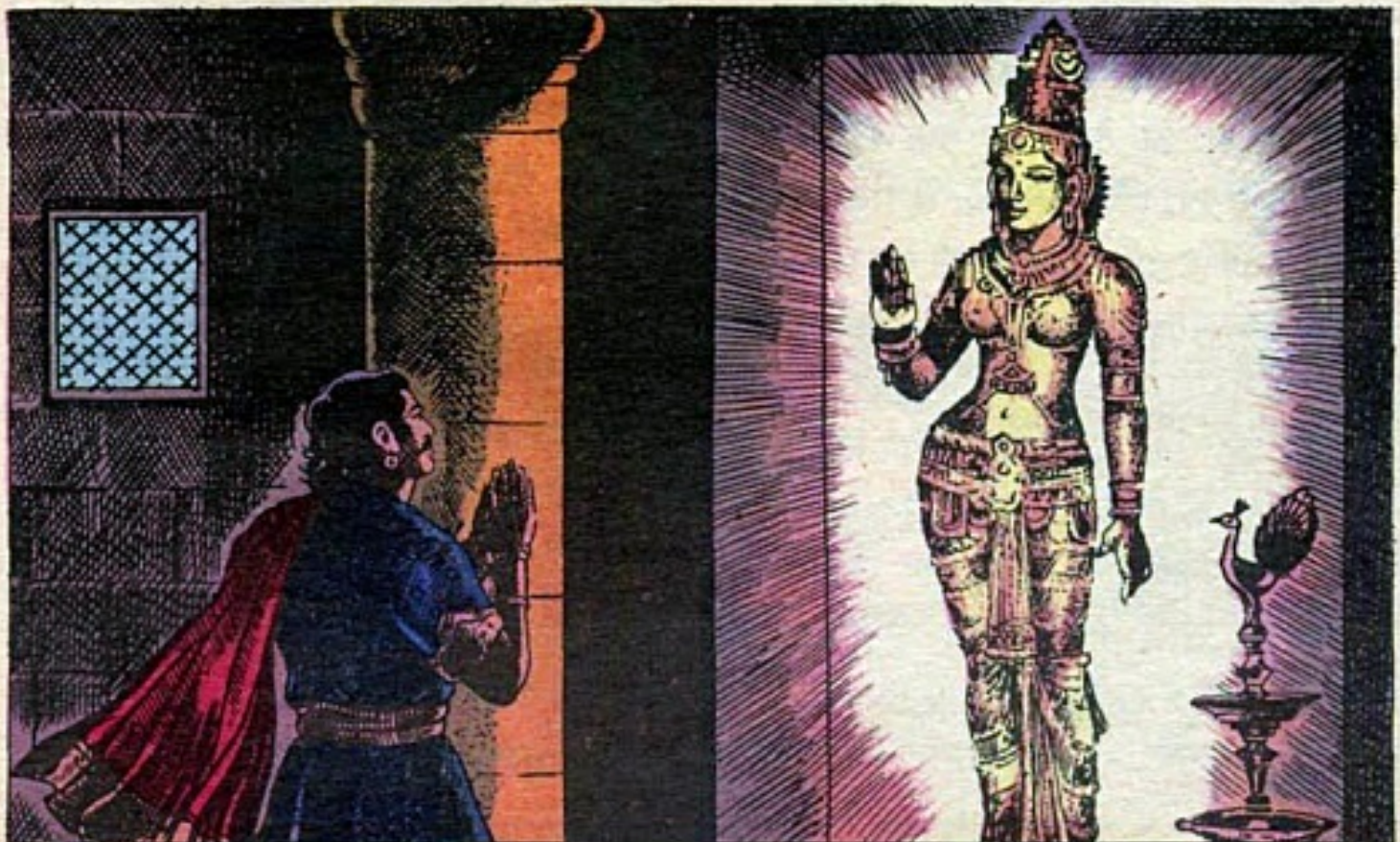
वसन्तसेन ने श्रवणानन्द को उकसाते हुए कहा।

श्रवणानन्द ने अपनी स्वीकृति दे दी और अपने राज्य को दाँव पर लगा दिया। दोनों बड़ी कुशलता से शतरंज की चालें चलने लगे। दुर्भाग्य से श्रवणानन्द हार गया। अपने वचन के अनुसार श्रवणानन्द ने अपना राज्य वसन्त सेन को सौंप देना चाहा।

वसन्तसेन ने अस्वीकार कर हँसते हुए कहा, "मैंने खेल में उत्साह पैदा करने के ख्याल से ही तुम्हारे सामने यह प्रस्ताव रखा था। हम दोनों गहरे दोस्त हैं। मैं तुम्हारा राज्य लेकर मित्रदोह नहीं कर सकता। तुम अपना राज्य वापस ले लो।"

श्रवणानन्द ने इस पर आपत्ति की और कहा, "हो सकता है, तुमने मज़ाक में ये बातें कही हों, लेकिन मैंने तो सच्चे हृदय से अपने राज्य को दाँव पर लगाया था। मैं अपना वचन कभी नहीं तोड़ सकता। तुम यह राज्य खुशी से स्वीकार करो! आज से कुण्डल देश तुम्हारा है!"

फिर भी वसन्तसेन ने श्रवणानन्द की बात नहीं मानी। इस समस्या के समाधान के लिए श्रवणानन्द ने धर्मदेवी की शरण लेना उचित समझा।

इस के बाद दोनों मित्र मंदिर में पहुँचे। श्रवणानन्द ने देवी के सामने अपनी समस्या रखी और समाधान के लिए प्रार्थना की।

श्रवणानन्द अपने मेहमान मित्र को असन्तुष्ट नहीं करना चाहता था, इसलिए वह मन में संकोच होने के बाद भी वसन्तसेन के साथ शतरंज खेलने को तैयार हो गया।

"खेल में कोई दाँव न लगाया तो मज़ा नहीं आयेगा, इसलिए तुम मेरी बातों को बुरा न मान कर किसी चीज़ का दाँव लगाओ!" वसन्तसेन ने कहा।

श्रवणानन्द ने अपने हाथ का कंगन निकाल कर दाँव पर लगा दिया। वसन्तसेन हँसकर बोला, "हम लोग राजा होकर क्या साधारण प्रजा की तरह इतनी साधारण वस्तु को दाँव पर लगायेंगे? यह तो हास्यास्पद है, मैं अपने राज्य को दाँव पर लगाता हूँ, तुम भी यही करो!"

इस बार धर्मदेवी की प्रतिमा प्रकाश से जगमगायी नहीं। बुझे हुए स्वर में देवी ने कहा, "श्रवण, किसी के हाथ राज्य सौंपनेवाले तुम कौन होते हो ? और उसे स्वीकार करनेवाले वसन्तसेन कौन होते हैं ? दर असल राज्य प्रजा का है। राजा केवल शासक होता है। सच्ची बात तो यह है, राजा के हाथ में राज्य मंदिर की धरोहर की तरह है, उसकी अपनी संपत्ति की तरह नहीं।"

धर्मदेवी का उत्तर सुनकर वसन्तसेन अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने देवी को सच्चे हृदय से साष्टांग प्रणाम किया और वहीं से अपने देश लौट गया।

श्रवणानन्द भी कुछ देर बाद लौटने को उद्यत हुआ। धर्मदेवी की प्रतिमा के भीतर से आवाज़ आयी, "श्रवण, तुमने राज्य को दाँव पर लगाने से पूर्व प्रजा के बारे में बिलकुल नहीं सोचा। तुमने धर्म का अतिक्रमण किया और जुआरी बन गये। अब तुम राजपद के योग्य नहीं रहे। जिस राज्य में तुम रहोगे, वहाँ मैं नहीं रहूँगी।"

दूसरे ही क्षण धर्मदेवी की प्रतिमा का सिर खंडित होकर नीचे गिर पड़ा।

श्रवण अत्यन्त भारी मन से अपने महल को लौट आया। उसने शुभ मुहूर्त देखकर अपने पुत्र नागानन्द का राज्याभिषेक किया और उसे राज्य सौंप कर यह शिक्षा दी, "पुत्र, यह राज्य प्रजा का है। तुम इसके केवल शासक और संरक्षक हो। यह बात कभी न भूलना और धर्मदेवी को सदा अपने हृदय में प्रतिष्ठित रखना।"

दूसरे दिन सवेरे ही श्रवणानन्द पैदल धर्मदेवी के मंदिर में चला गया। यह देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही कि धर्मदेवी का मस्तक यथास्थान पर है।

देवी की प्रतिमा आज पहले सब दिनों से ज़्यादा जगमगा रही थी। श्रवणानन्द के हृदय का भार हलका हो गया। उसके नेत्र अश्रुपूरित हो गये। उसने देवी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया।

बहू का डर

श्यामसिंह ब्रजगाँव का जाना-माना सज्जन व्यक्ति था। उसने अपने पुत्र सूरजसिंह का विवाह पड़ोसी गाँव की एक सुन्दर सुशील लड़की स्वर्णलता से किया। जिस दिन स्वर्णलता अपने श्वशुर-गृह आयी, श्यामसिंह ने उसे समझाकर कहा, "देखो बहू, तुम्हारी सास का स्वभाव ज़रा चिड़चिड़ा है। वह जो कहे, तुम शांतिपूर्वक उसका कहा करती रहना !"

"अच्छा, पिताजी !" स्वर्णलता ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

स्वर्णलता बड़े सब्र और परिश्रम से घर का काम-काज करने लगी। सास कमलाबाई जब-तब उसके सिर नये-नये काम मढ़ देती, पर स्वर्णलता बिना किसी आनाकानी के सब काम कर देती।

एक दिन स्वर्णलता को कुएँ से पानी लाने में कुछ देर होगयी। कमलाबाई खीज कर दरवाज़े पर पहुँची और बोली, "बहू, एक पानी भरने में ही इतनी देर लगाओगी तो कैसे काम चलेगा ? ये कपड़े कब धोओगी ?"

सास की तेज़ आवाज़ से स्वर्णलता घबराकर काँपने लगी। नियंत्रण न रहने से उसके हाथ का कलश नीचे गिर गया और उसमें एक तरफ़ गड्ढा पड़ गया। कमलाबाई ने उसे और भी झिड़कियाँ दीं।

स्वर्णलता काँपकर चुप रह गयी। पिछवाड़े के कमरे से श्यामसिंह ने यह देखा तो पत्नी के पास जाकर उसे शांत करते हुए बोले, "बहू डर रही है ! अब उसे और कुछ मत कहो !"

एक दिन दोपहर के समय जब सब लोग खाने बैठे तो स्वर्णलता ने घी परोसने के लिए कटोरी उठायी।

कमलाबाई ने बहू की तरफ़ तेज़ निगाह से देखकर कहा, "बहू, मैंने तुम्हें कितनी बार समझाया कि घी को गरम किये बिना मत परोसा करो ! कैसी जड़ बुद्धि है तुम्हारी ?"

गिरीश दत्त

स्वर्णलता डर से थर-थर काँपने लगी और उसके हाथ से घी की कटोरी छूट कर जमीन पर गिर गयी ।

"अरे, शुद्ध देशी, इतने मँहगे घी को गिराकर तूने कितना नुक़सान कर दिया ?" कहकर कमलाबाई ज़ोर-ज़ोर से बहू को डाँटने लगी ।

बहू को काँपते देख श्यामसिंह को बड़ा रहम आया । उसने जैसे-तैसे पत्नी को समझा-बुझाकर शांत किया ।

एक दिन शाम स्वर्णलता कुएं से पानी खींच रही थी । उसी समय कमलाबाई वहाँ मुँह बनाये आ पहुँची और गरज कर बोली, "अरी बहू, वहाँ चूल्हे पर चावल जल रहा है और तू जरा भी परवाह न कर यहाँ चली आयी है ! तेरे दिमाग़ में क्या गोबर भरा है ? कुछ भी अक्ल नहीं है ?"

स्वर्णलता घबरा गई । इस कारण उस के हाथों से रस्सी छूट गयी और डोल कुएँ में जा पड़ा । उसके पति सूरजसिंह ने काँटा लाकर डोल को कुएँ से निकाला ।

दूसरे दिन सवेरे स्वर्णलता ने दोनों गायें दुहीं और दूध का भरा हुआ बरतन लेकर अन्दर आने लगी । तभी चिड़चिड़ करती सास सामने आगयी और बोली, "अरी बहू, तुझे कितनी बार समझाया कि सबसे पहले पशुओं को सानी डाल दिया कर ! पर तू अपनी आदत छोड़नेवाली नहीं है !"

सास की चिल्लाहट सुनकर स्वर्णलता डर गयी और घबराहट में दूध का भरा बरतन उसके हाथ से छूट पड़ा ।

बाहर से घर के अन्दर आ रहे श्यामसिंह ने इस दृश्य को देखा तो बहू से पूछा, "स्वर्णा, उस दिन तुमने कलश गिरा दिया, फिर घी की कटोरी नीचे गिरा दी । कुएँ में डोल डाल दिया और अब दूध गिरा दिया । यह तुम्हें अकसर क्या हो जाता है ? ऐसे ही करती जाओगी तो काम कैसे चलेगा ?"

स्वर्णलता ससुर की बातें सुनकर और घबरा गयी । सिर झुकाकर रुआँसे स्वर में बोली, "पिताजी, जब कोई मुझे डाँटता है तो मैं डरकर काँपने लगती हूँ । उस वक्त कुछ न कुछ गलती

हो जाती है मैं क्या करूँ ?"

श्यामसिंह ने अपनी पत्नी से कहा, "तुम जब-तब बहू को डाँटा मत करो। रोज़ कुछ न कुछ नुक़सान हो जाता है। तुम अपने क्रोध पर क़ाबू नहीं रख सकतीं ?"

कमलाबाई नाराज़ होकर वहाँ से मुँह बनाकर चली गयी।

दूसरे दिन कमलाबाई की पड़ोसिन कांताबाई किसी काम से उसके घर आयी। दोनों बाहर बैठकर बातें करने लगीं। कमलाबाई ने आवाज़ देकर स्वर्णलता से पानी लाने के लिए कहा।

स्वर्णलता अंदर थी। पानी लाने में कुछ देर हो गयी। सास ने क्रुद्ध होकर कहा, "मेरे पुकारते ही तुझे पानी लाकर देने में क्या मुसीबत आगयी थी ?"

स्वर्णलता भय के मारे काँप उठी और उसके हाथ से पानी का लोटा नीचे गिर पड़ा। कमलाबाई खीज कर कांताबाई से बोली, "बहन, मैं तो अपनी बहू से तंग आ गयी हूँ। ज़रा-सा कुछ कहती हूँ तो हाथ की चीज़ नीचे गिरा देती है और पूछने पर कहती है, मुझे डर लगता है सचमानो, मैं अपनी बहू से तंग आ गई हूँ !"

"हाँ, बहन, कुछ लड़कियाँ जब नयी-नयी ससुराल में आती हैं तो इसी तरह डरती रहती हैं। इससे घर की चीज़ों का नुक़सान भी होता है और मन भी ख़राब हो जाता है। मैं तो ऐसा सोचती हूँ कि हमें अपने क्रोध पर क़ाबू रखना चाहिए और नरमी से काम लेना चाहिए। इससे यह समस्या अपने आप हल हो जायेगी।" कांताबाई ने समझाया।

उस दिन से कमलाबाई अपने चिड़चिड़े स्वभाव पर क़ाबू रखती और बहू से शांतिपूर्वक बात करती। बहू के कारण कमलाबाई में हुए परिवर्तन को देखकर श्यामसिंह बहुत प्रसन्न हुआ।

स्वर्णलता बड़ी समझदार थी। उसने अपनी सास के स्वभाव को बदलने के लिए डर कर काँपने का तरीका अपनाया था। इसमें उसका पति सूरजसिंह ही साथी था।
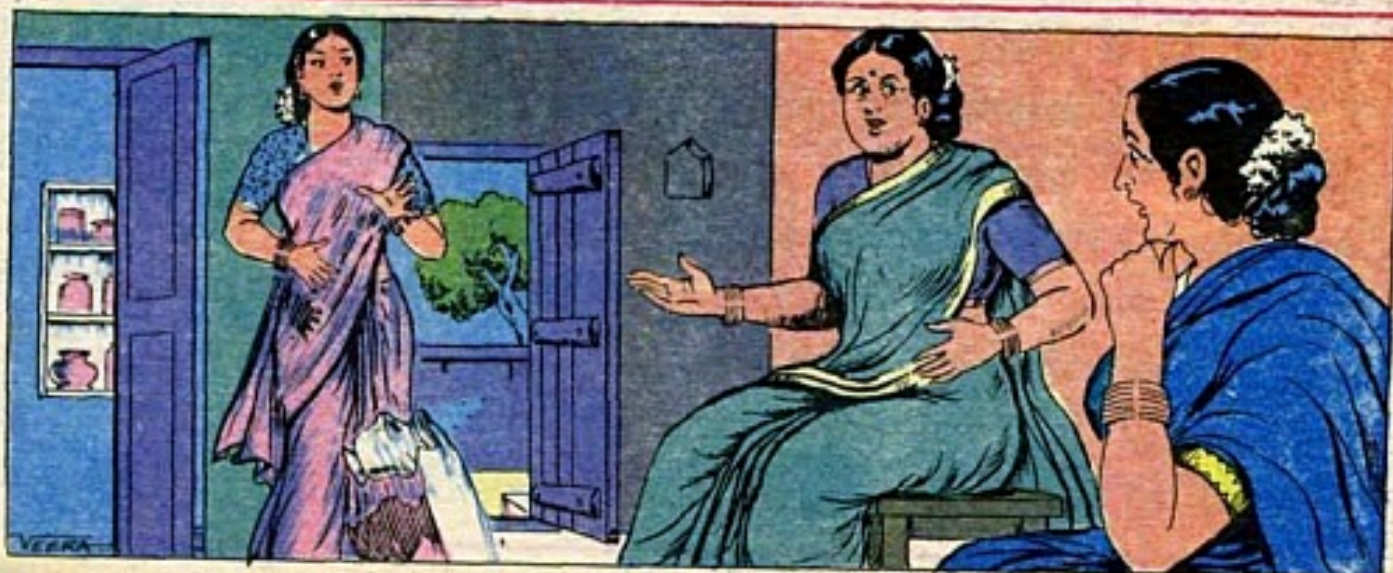
विवाह के उपरान्त शिव-पार्वती प्रायः एकान्त में ही रहते। इस बीच देवताओं पर तारकासुर के अत्याचार बढ़ते गये। त्रस्त होकर देवता ब्रह्मा के पास पहुँचे और बोले, "भगवन्, आपने तारकासुर को वरदान दिया। इसी कारण हम इतनी यातनाएँ भोग रहे हैं। उसके मरने पर ही हम लोग कष्टों से मुक्ति पा सकेंगे !"

ब्रह्मा ने कहा, "यह सत्य है कि मैंने तारक को असाधारण वर दिये। लेकिन वर दिये बिना मैं कैसे रह सकता था ? दुष्ट हो या सज्जन, जो भक्त बड़े आत्म-विश्वास के साथ मेरे प्रति घोर तपस्या कर के मुझ को प्रसन्न करता है, उस तपस्या के फलस्वरूप मुझे उसको वर तो देना पड़ता है और आगे भी देना पड़ेगा। दुष्ट समझकर वर न दें तो भी वे तपस्या तो करेंगे। उनकी तपस्या से उत्पन्न अग्नि सारे लोकों को जला डालेगी। लोकों की रक्षा के लिए ही मुझे विवश होकर वर देना पड़ता है। उन वरों के बल से फिर वे सबको सताने लगते हैं। यही तारकासुर कर रहा है। अब उसे मारने की आवश्यकता आगयी है। शिवजी ने उस को इसलिए वर नहीं दिया था कि वह सज्जनों को सतावे और अत्याचार करे। वह अब अपने वरदान के बल पर अहंकार में आकर देवताओं तथा ऋषि-मुनियों को सताने लग गया है। मेरे विचार से तारकासुर का यह कार्य शिवजी केलिए भी हर्ष दायक नहीं है। फिर भी हम अब सीधे शिवजी के पास न जाकर स्थिति कारक विष्णु से निवेदन करेंगे। चलो, हम पहले विष्णु के पास चलते हैं। उनसे अपनी कठिनाइयाँ निवेदन करेंगे।"

स्तोत्रप्रिय शिव ने देवताओं की पुकार सुन ली। वे तुरन्त अपने भवन के द्वार पर आये और देवताओं से पूछा, "हे देवगण, आप लोग मेरा स्तवन किस लिए कर रहे हैं ? बताइये, मैं आपका क्या प्रिय करूँ ?"

शिव को समक्ष देख ब्रह्मा आदि देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया और निवेदन किया, "हे जगदीश्वर, तारकासुर के अत्याचार दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं। उसके अत्याचारों से न केवल देवगण, बल्कि ऋषि-मुनि, मानव भी त्रस्त होगये हैं। वह सबके यज्ञ-याग, तपश्चर्या में विघ्न डालता है, शुभ कर्म में बाधक बनता है। आपके अंश से उत्पन्न पुत्र ही उसका वध करने में समर्थ है। इसी कार्य के हेतु हम आपकी स्तुति कर रहे हैं।"

देवताओं की प्रार्थना सुनकर शिव ने उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए अपने मन में संकल्प किया। और मार्गशीर्ष षष्ठी को घनिष्ठा नक्षत्र एवं वृश्चिक लग्न में एक बालक की सृष्टि की। उस बालक के छह सुन्दर मुख थे, बारह हाथ थे और वज्र शरीर था। वायुदेव ने उस बालक को उठा ले जाकर गंगा नदी के किनारे हरी दूब में छोड़ दिया।

थोड़ी देर बाद वहाँ छह मुनि-पत्नियाँ पहुँचीं। उस बच्चे को देखते ही उनका वात्सल्य उमड़ पड़ा। उनके वक्ष में दूध उफन आया और उस बालक ने अपने छह मुखों से छह मुनि-पत्नियों के दूध का पान किया।

इसके बाद ब्रह्मा स्वयं वहाँ आये और उस बालक का विधिपूर्वक नामकरण कर उसे षण्मुख नाम दिया।

यही बालक कुमार स्वामी, कार्तिक, स्कन्द,

ब्रह्मासहित सब देवगण विष्णु के पास गये और तारक के अत्याचारों का बखान किया। विष्णु ने कहा, "सुनो, मैं तारकासुर के अत्याचारों से प्रसन्न नहीं हूँ। वास्तव में वह दण्ड पाने लायक है। फिर भी उसे एक ऐसा वर प्राप्त हुआ है, उसी के आधार पर उसका संहार हो सकता है। शिव और पार्वती दाम्पत्य-जीवन बिता रहे हैं। उनके एक पुत्र के जन्म के साथ ही आप की सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी।"

शिव-पार्वती का विवाह हुए काफ़ी समय हो चुका था, पर अभी तक उनके कोई सन्तान नहीं हुई थी। इसलिए देवताओं ने विष्णु से निवेदन किया, "भगवान्, आप कृपा करके स्वयं शिव के समक्ष जाकर हमारी यातनाओं का हाल सुनाइये!" ब्रह्मा और देवगणों के साथ विष्णु कैलास में पहुँचे। शिव के भवन के चारों ओर नन्दीश्वर आदि गण पहरा दे रहे थे।

विष्णु ने नन्दीश्वर से कहा, "हम भगवान शिव के दर्शन करना चाहते हैं। हमें अन्दर जाने की अनुमति दो!"

नन्दीश्वर ने कहा, "हमारे स्वामी शिव देवी पार्वती के साथ भवन के अन्दर एकान्त में हैं। उनका आदेश है कि हम अन्दर किसी को भी प्रवेश न करने दें। आप कृपया हमें क्षमा कर दें

अपने काम को सिद्ध न होता देख विष्णु ने देवताओं से कहा, "तुम लोग पार्थिव लिंग तैयार करो और शिव-पंचाक्षरी मंत्र के जप के साथ शिव की अर्चना करो। शिव अवश्य ही प्रसन्न होकर दर्शन देंगे!"

देवताओं ने मिट्टी से पार्थिव लिंग तैयार किया। पंचाक्षरी मंत्र का जाप करते हुए षोडश उपचार किये और उच्च स्वर में पुकारा, "हर हर महादेव शम्भो!"

पर्वत के वासी राक्षस कुमार स्वामी के साथ युद्ध करने के लिए नीचे उतर आये ।

कुमार स्वामी ने उन सबका वध कर दिया ।

इस बीच शिव-पार्वती के इक्कीस संतानें हुईं । वे सभी पुत्र थे, जो विभिन्न गणों के मूल पुरुष होकर गणपति बन गये ।

शिव के आदेश से नन्दीश्वर ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि देवताओं को बुला लाया । शिव ने गंगा-तट से कुमार को भी लाने का आदेश दिया । कुमार स्वामी अपनी माता बनी छह कृत्तिकाओं के साथ पुष्पक विमान में कैलाश आ गया ।

पार्वती-परमेश्वर ने आगे बढ़कर कुमार का आलिंगन किया और सभा में अपने पास ही आसीन किया ।

ब्रह्मा अपने आसन से उठे और कुमार को लक्ष्य कर शिव-पार्वती से बोले, "पार्वती-परमेश्वर, आज आपका पुत्र कुमार स्वामी कैलाश में आ गया है । कल देवताओं के सेनापति के रूप में उसका अभिषेक करना सबको अभीष्ट होगा !"

ब्रह्मा के प्रस्ताव पर सारे सभासदों ने हर्ष प्रकट किया । पार्वती-परमेश्वर ने सारे देवताओं के समक्ष कुमार का उपनयन संस्कार संपन्न किया ।

इसके बाद ब्रह्मा ने पुरोहित बनकर कुमार स्वामी का देव-सेनापति के रूप में अभिषेक किया ।

पार्वती-परमेश्वर कुमार स्वामी से बोले, "वत्स, तुम अब देवताओं के सेनापति बन गये

गुह आदि नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

इसके बाद मुनि-पत्नियों ने एक स्वर में छह मुखवाले उस बालक से पूछा, "बेटा, हमारे पतियों ने हमें त्याग दिया है । हमारा क्या होगा ?"

कुमार स्वामी ने उत्तर दिया, "मैं आप लोगों का पुत्र हूँ, आप मेरी माताएँ हैं । इसलिए आप को कहीं जाने की जरूरत नहीं है । आप सब मेरे साथ ही रहें !"

कुमार स्वामी क्रमशः बड़ा होता गया । वह पहाड़ों और घाटियों में खेलता और सिंह तथा बाघों को पकड़कर उनकी सवारी करता ।

उसके हाथ शिव जी का धनुष लगा तो उसने उस पर बाण चढ़ा कर क्रौंच-पर्वत को बेध डाला ।

अपने आवास-स्थान को बिंधा देख उस

हो । इंद्र के सहायक बनकर तुम तीनों लोकों की रक्षा करो । दुष्टों तथा पापियों का संहार करो और महान देवता कहलाकर यश प्राप्त करो !''

विश्वकर्मा ने कुमार स्वामी के लिए स्वर्ग में एक अनुपम एवं सुन्दर भवन का निर्माण किया

भवन निर्मित हो जाने पर पार्वती-परमेश्वर ने कुमार से कहा, ''वत्स, तुम्हारे लिए स्वर्ग में भवन तैयार है । तुम वहाँ अपना निवास-स्थान बना लो !''

पार्वती ने कुमार को अपने देवी-गण दिये । देवताओं ने कुमार स्वामी को अनेक शस्त्रास्त्र एवं आयुध दिये और तारक का संहार करने के लिए आशीर्वाद दिया ।

इसके उपरान्त कुमार स्वामी ने ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र आदि देवताओं को प्रणाम किया । तदनन्तर अपने गणों को आदेश दिया, ''तुम लोग तारकासुर के नगर को घेरने के लिए आवश्यक तैयारियाँ करो !''

इसके बाद कुमार ने और भी कुछ कार्य सम्पन्न किये और स्वर्ग के भवन में प्रवेश करने के लिए प्रस्थान किया ।

उधर शोणितपुर में तारक को यह समाचार मिला कि सब देवताओं ने शिव के अंश से उत्पन्न कुमार स्वामी को अपना सेनापति बनाया है और उसके संहार की आवश्यक सारी तैयारियाँ हो चुकी हैं ।

तारक ने तुरन्त अपने मंत्रियों और सेना के विशिष्ट अधिकारियों को बुलाकर समझाया, ''हमारे ऊपर कुमार स्वामी के सेनापतित्व में

देवसेना का आक्रमण होनेवाला है । तुम सब उनका सामना करने के लिए अपनी सेनाओं को सन्नद्ध कर लो !''

इसके बाद शिवभक्त तारकासुर ने शिव का पार्थिव लिंग बनाया और पूजार्चन के लिए बिल्वपत्र, नारियल, पंचामृत, फूल, फल और सुगन्धित द्रव्य तैयार किये । उसने शिव-लिंग का अभिषेक किया और धूप, दीप, नैवेद्य अर्पित किया ।

पूजा समाप्त कर तारक ने शिवजी को प्रणाम करके कहा, ''हे जगदीश्वर, मैंने आपकी उपासना की है, मुझे इसका समुचित फल प्रदान कीजिए !''

उधर स्वर्ग में देवगुरु बृहस्पति ने युद्ध का

मुहूर्त निकाला और कुमार स्वामी ने देव, रुद्र, वीरभद्र तथा देवीगणों के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान कर दिया। रणभेरियों से आकाश गूँज उठा ।

कुमार सव्वामी इंद्र एवं समस्त देव-सैन्य के साथ शोणितपुर के निकट पहुँचा और उसने नगर को घेर कर अनेक शिविरों का निर्माण किया ।

इसके बाद एक विशाल शिविर के मध्य इंद्र आदि के साथ आसन पर बैठकर उसने कहा, "हमारे लिए उचित होगा कि हम युद्ध करने से पहले सन्धि का प्रयत्न करें। हम सन्धि-प्रस्ताव के साथ एक दूत को तारक के पास भेजते हैं। इस विषय में आप लोग मुझे अपनी राय दें !"

इंद्र आदि सभी देवताओं ने अपनी सम्मति दी । कुमार स्वामी ने अपने वक्ष से उत्पन्न विशाख को अपना दूत बनाया और कहा, "विशाख, तुम तारकासुर की सभा में जाकर मेरी ओर से सन्धि का प्रस्ताव करो और तारक का उत्तर पाकर तुम तुरन्त लौटकर मुझे उसकी सूचना दो !"

विशाख ने शोणित पुर में प्रवेश किया। राजसभा में पहुँचने पर उसने देखा कि तारक अपने सेनापतियों एवं सभासदों के साथ युद्ध की चर्चा ही कर रहा है ।

तारक ने विशाख को देखकर पूछा, "तुम कौन हो और यहाँ किसलिए आये हो ?"

विशाख ने कहा, "तारक, यह सर्व विदित है कि तुम शिवभक्त हो। शिवपुत्र कुमार स्वामी ने मुझे अपना दूत बनाकर तुम्हारे पास भेजा है।"

तारक ने प्रसन्न होकर विशाख को आसन पर बैठाया और पूछा, "दूत, हमें बताओ। कुमार स्वामी ने हमें क्या संदेश भिजवाया है ? देवता तो मेरे शत्रु हैं पर कुमार स्वामी तो मेरे शत्रु नहीं हैं ।"

"तारक, तुमने बहुत काल तक तीनों लोकों पर शासन किया है, लेकिन तुम्हारे शासन-काल में प्रजा कभी सुखी नहीं रही। इसलिए अब तुम अपना अधिकार इंद्र को सौंप दो और भोगवतीपुर में चले जाओ। यदि तुम ऐसा नहीं करते हो तो कुमार स्वामी तुम्हारे अनुचरों सहित तुम्हारा वध करेंगे और तुम्हारे अधिकार को इंद्र
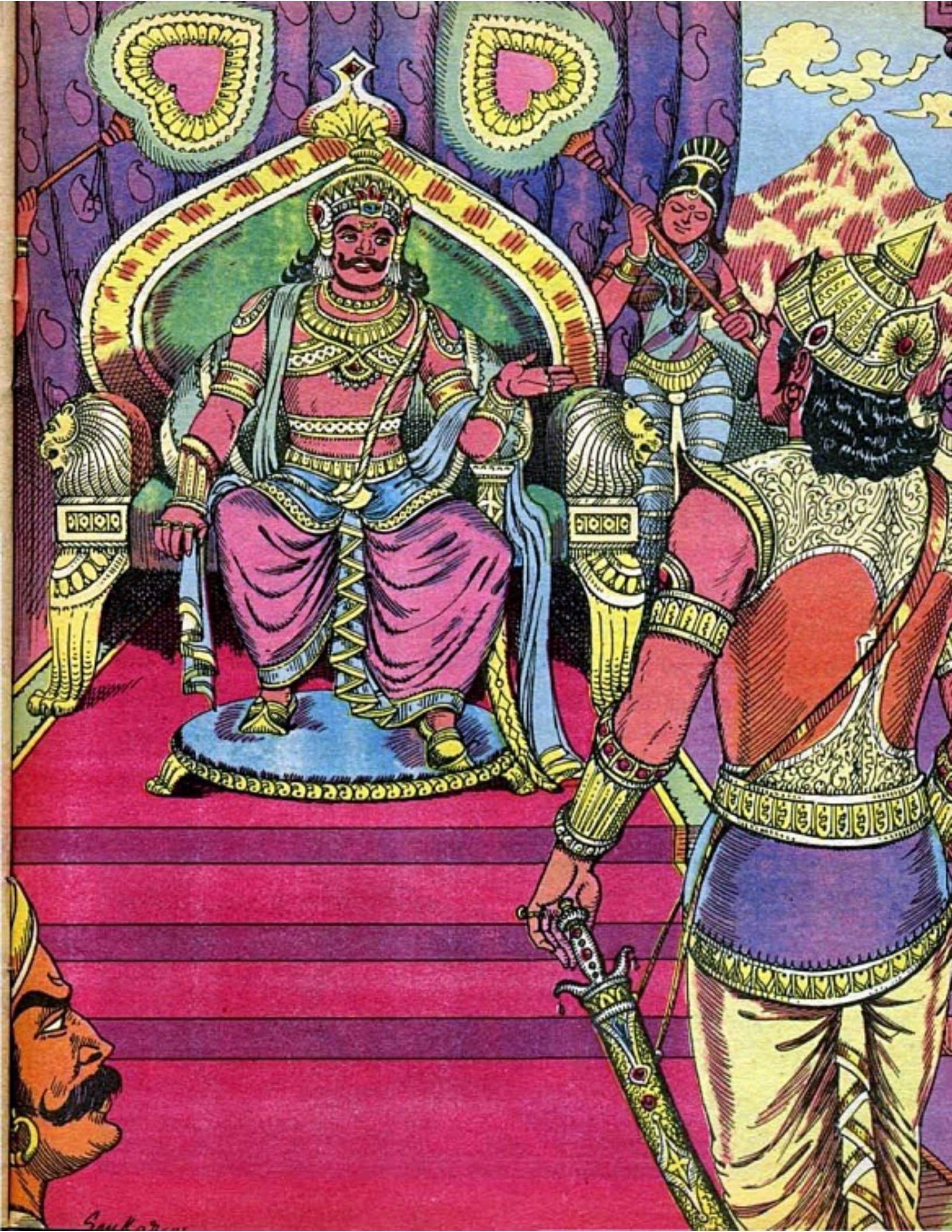
के हाथ सौंप देंगे। इसी सन्देश के साथ कुमार स्वामी ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।" विशाख ने कुमार स्वामी का संदेश सुनाया।

तारक ने विशाख के मुँह से कुमार स्वामी का सन्देश सुना। उसे यह संदेश अपमान जनक प्रतीत हुआ। चाह कर भी वह अपने मन पर नियंत्रण न कर पाया। यह सन्देश उसके पौरुष को ललकारने वाला था। इसलिए भला वह कैसे चुप रह सकता था। उसकी सहन शक्ति ने उसे जवाब दे दिया। इस कारण तारक क्रुद्ध हो उठा, और झल्लाकर बोला, "अपने स्वामी से कहना, मैं किसी धमकी से डर कर राज्य और अधिकार छोड़ने के लिए तैयार नहीं हूँ। कल सुबह मैं युद्ध के लिए प्रस्थान करूँगा। कुमार स्वामी के सन्देश का जवाब युद्ध भूमि में समक्ष मिल जाएगा! इसलिए तुम यहाँ से चले जाओ और उनसे कहना, वे भी युद्ध केलिए तैयार रहें!"

दूसरे दिन सूर्योदय के समय दोनों पक्षों की सेनाएँ युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर मैदान में खड़ी हो गयीं। दोनों ही पक्षों के वीरों ने प्राणों का मोह त्याग कर संग्राम किया।

तारक की ओर से आये वीरों में बाणासुर, प्रलंभासुर, जंभासुर, अतिबल, शंभासुर, कुंभासुर मुख्य थे।

कुमार स्वामी के पक्ष में वीरभद्र, अग्निहोत्र, धर्मु, सूर्य-चंद्र इत्यादि वीर थे।

युद्ध अनेक दिनों तक चलता रहा, पर तारक के हार जाने के लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे। देवता थक कर शिथिल हो रहे थे। उनकी हिम्मत जवाब दे रही थी। अपने सैन्य की यह दशा देख कुमार स्वामी विचलित हो उठे। अब विलम्ब करने से देवताओं का उत्साह मन्द पड़ जाने का ख़तरा था। ये ही सब विचार करके अपने अन्तिम प्रयोग के रूप में कुमार स्वामी ने पाशुपत अस्त्र का प्रयोग किया। वह अस्त्र तारक के सम्पूर्ण सैन्य पर कई हज़ार बिजलियों की भाँति गिरा। असुर-सैन्य एकदम बिखर गया। जो लोग युद्धक्षेत्र में डटे रहे, वे सब जलकर भस्म हो गये।
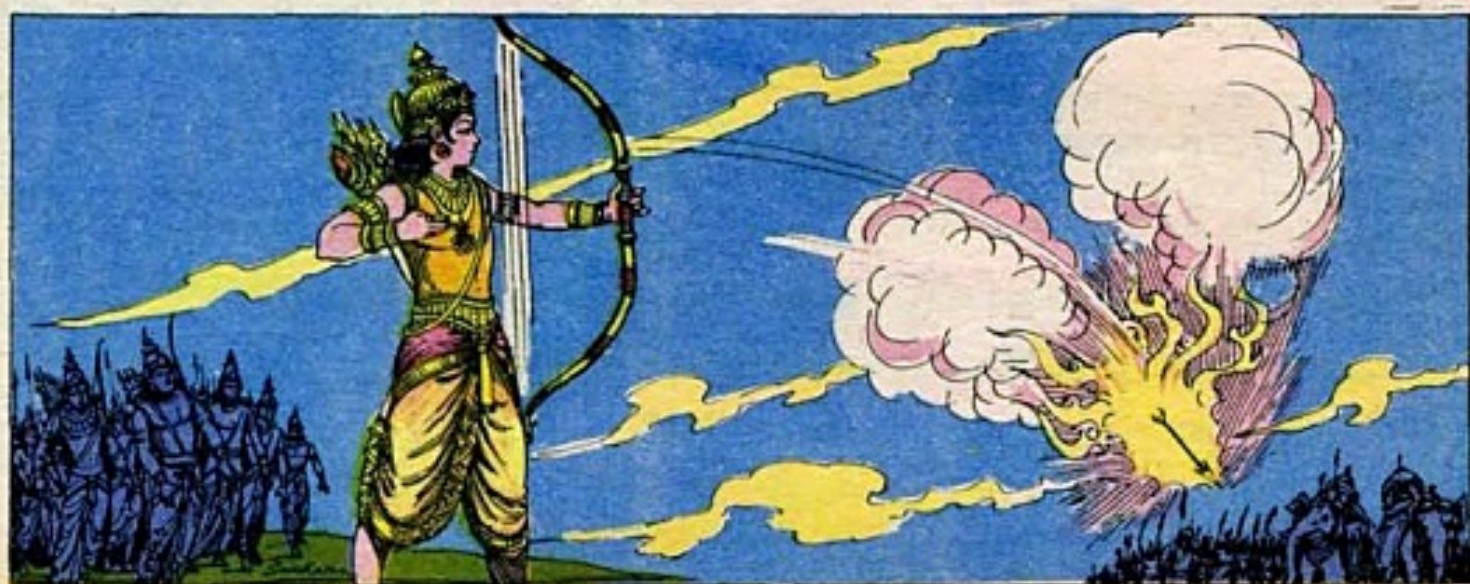
उपकार

बस्रा नगर में एक युवक व्यापारी रहता था, नाम था अजीज़। वह न केवल अमीर था, बल्कि ईमानदार भी था। अगर किसी पर विपदा आती तो अजीज़ सबसे आगे बढ़कर उसकी मदद करता था। सभी लोग उसका बहुत आदर करते थे।

अजीज़ के पड़ोस में सैयद नाम का एक और व्यापारी भी रहता था। समाज में अजीज़ का इतना नाम और यश देखकर सैयद को बडी जलन होती थी। उसे रातों में नींद भी ठीक से नहीं आती थी। इसी मानसिक चिन्ता में वह बीमार पड़ा और उसने चारपाई पकड़ ली।

एक दिन सैयद की बीबी अजीज़ के घर आयी और अजीज़ से बोली, "भाईजान, मेरा शौहर तो आपकी दौलत और शोहरत देख कर चिन्ता के मारे बीमार पड़ गया है। इस वक्त वह चलने-फिरने तक की हालत में नहीं है।"

सैयद की बीबी दूर के रिश्ते में अजीज़ की बहन लगती थी। उसने उसे समझाया, "सलमा, तू चिन्ता न कर। तेरा शौहर ठीक हो जाये, मैं जल्दी ही इसका उपाय करूँगा।"

उस रात अजीज़ सैयद के बारे में ही सोचता रहा। उसकी संपत्ति एक पड़ोसी भाई की चिन्ता और बीमारी का कारण बन गयी है, यह विचार उसके मन को मथने लगा। जो संपत्ति दूसरों को दुख दे, उसके होने, न होने से क्या बनता-बिगडता है — ऐसा निश्चय कर दूसरे दिन सुबह अजीज़ ही घर से निकल पड़ा।

अजीज़ शाम तक पैदल चलता रहा। जब वह थक कर चूर होगया तो एक उजाड़ कुएँ के पास जाकर रुक गया। कुएँ के चारों तरफ़ हरी घास उगी हुई थी। थकान के कारण उसे गहरी नींद ने आ घेरा।

दूसरे दिन सुबह उस रास्ते से कुछ सौदागर निकले। उन्होंने अजीज़ को पहचान लिया। उसे जगाया। दूध, रोटी खाने को दी और पूछा,

'अरब की रातों' से एक कहानी

सैयद को जब यह मालूम हुआ कि अजीज़ बसरा शहर छोड़कर कहीं और चला गया है, तो उसे बहुत खुशी हुई। लेकिन, अभी थोड़े ही दिन बीते थे कि उस ने अजीज़ के जीवन के नये मोड़ और नाम-यश के बारे में सुना। वह फिर दुख से भर गया। एक दिन वह अजीज़ को देखने के लिए घर से निकल पड़ा।

जब सैयद अजीज़ के पास पहुँचा तो शाम हो चुकी थी। अजीज़ अपने शिष्यों के साथ बैठकर धर्म-चर्चा कर रहा था। सैयद ने निकट जाकर अजीज़ को सलाम किया और कहा, "भाईजान, मैं एक खास बात पर आपसे गुप्त चर्चा करना चाहता हूँ।"

अजीज़ ने अपने शिष्यों को बाहर जाने का इशारा किया। शिष्य कुटी से बाहर चले गये।

"महात्मा, क्या आपने मुझे नहीं पहचाना? मैं आपका पड़ोसी सैयद हूँ। आपसे एक ख़ास बात बताने आया हूँ। चलिये, उस मैदान में। वहीं मैं आपको सब बता दूँगा।" सैयद ने कहा।

इसके बाद वे मैदान में थोड़ी दूर निकल गये और एक कुएँ के पास पहुँचे।

"अजीज़, इस कुएँ में एक अजीब चीज़ है, आओ, तुम्हें दिखाऊँ।" कहकर सैयद अजीज़ को कुएँ की जगत पर ले गया।

अजीज़ ने कुएँ के अन्दर झाँकने के लिए अपनी गरदन झुकायी ही थी कि सैयद ने पीछे से धक्का दे दिया। अजीज़ को कुएँ में मरने के लिए छोड़कर सैयद ने अपने घर की राह ली।

"अजीज़, तुम यहाँ किस काम से आये हो?"

"मैं दौलते से ऊब गया हूँ। आइन्दा मैं व्यापार नहीं करूँगा।" अजीज़ ने जवाब दिया।

वे लोग अजीज़ के स्वभाव से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने उसके लिए सारा इन्तज़ाम किया, सेवा के लिए दो नौकर दिये और वहाँ से चले गये। रास्ते में उन्हें जो भी गाँव मिले, उन्होंने यह प्रचार कर दिया कि अमुक कुएँ के पास के मैदान में एक महात्मा ठहरे हुए हैं।

यह वृत्तान्त सुनकर गाँव वाले कुएँ के पास पहुँचे और उन्होंने अजीज़ के लिए एक कुटी बनवायी। जो भी अजीज़ के पास आता, अजीज़ उन्हें उचित सलाह देता। वहाँ पर भी उसका नाम और यश चारों तरफ़ फैल गया।

अजीज़ तैरना नहीं जानता था । वह हाथ-पाँव मार रहा था कि कुएँ के अन्दर वास करनेवाली जलदेवियों ने उसे देखा । वे अजीज़ से परिचित थीं । जब से अजीज़ उस इलाके में आया था, हरी घास का वह वीरान मैदान आबाद हो गया था । जलदेवियों ने उसे डूबने नहीं दिया और कुएँ के अन्दर की ही सीढ़ियों पर बैठा दिया ।

"तुम्हें देखकर हमें बड़ा आनन्द हो रहा है । तुम्हारे कारण ही कल यहाँ सुलतान आनेवाला है ।" जलदेवियों ने कहा ।

"मेरे कारण क्यों ?" अजीज़ ने पूछा ।

"सुलतान की बेटी पर किसी शैतान का कब्ज़ा है । उस शैतान को उतारने के लिए सुलतान ने कई प्रयत्न किये, पर कोई नतीजा न निकला । तब किसी ने तुम्हारा नाम लिया और वह अब तुम से मिलने आ रहा है ।" जलदेवियों ने समझाया ।

"ओह, ऐसा है !" अजीज़ ने कहा ।

"तुम्हारे पास एक पालतू बिल्ली है न । तुम ऐसा करना, उसकी मूंछों में से एक बाल उखाड़कर रख लेना और जब सुलतान आये तो उस बाल को उसकी बेटी के सामने जलाना । उस बाल का धुआँ उसकी नाक में घुसते ही अन्दर बैठा हुआ शैतान भाग जायेगा ।" अजीज़ को अच्छी तरह से समझाकर जलदेवियों ने उसे कुएँ से बाहर पहुँचा दिया ।

कुटी में पहुँच कर अजीज़ ने बिल्ली की मूँछ

का बाल उखाड़कर अपने पास रख लिया और सुलतान के आने की राह देखने लगा ।

दूसरे दिन सूर्योदय होते ही हरकारे दौड़ते हुए आये और ऐलान किया कि सुलतान पधार रहे हैं । सुलतान भी जल्दी ही पहुँच गया और उन्होंने अपनी बेटी का सब हाल कह सुनाया ।

अजीज़ ने कहा कि शहज़ादी को उसके सामने लाया जाये । हरम के कुछ खास लोग शहजादी को ले आये । वह इधर-उधर ताक रही थी और अनाप-शनाप बक रही थी ।

अजीज़ ने बिल्ली की मूँछ के बाल को एक थाल में रखे अंगारों पर डाल दिया और शहज़ादी की गरदन झुकाकर उसकी नाक में उसके धुएँ को भर दिया । धुआँ लगते ही

शहज़ादी नीचे गिर गयी। थोड़ी देर बाद वह इस प्रकार उठ बैठी, मानो गहरी नींद से उठी हो। उसका चेहरा शांत था और होठों पर मुस्कान थी। उसने बड़े प्रेम से अपने बाप की तरफ़ देखा।

सुलतान खुशी से फूला न समाया। उसने अपनी बगल में खड़े वज़ीर की तरफ़ खुशी से देखा तो वज़ीर बोला, "हुज़ूर, क्या आप एक बात भूल गये ? सात माह पहले आपने मुझसे कहा था कि जो आदमी शहज़ादी के अन्दर से शैतान को निकाल देगा, उसके साथ मैं शहज़ादी की शादी करूँगा।" वज़ीर ने याद दिलाया।

"हाँ, मुझे याद है ! पर इस फक़ीर को भी तो मानना चाहिए न !" सुलतान ने कहा।

"यह मैं देख लूँगा।" वज़ीर ने कहा।

वज़ीर अजीज़ के पास पहुँचा और उसने सुलतान की इच्छा अजीज़ के सामने प्रकट की। अजीज़ ने सहज खुशी से वज़ीर के प्रस्ताव को मान लिया। सुलतान ने बड़े ठाठ-बाट के साथ बेटी की शादी अजीज़ के साथ कर दी।

शहज़ादी सुलतान की अकेली सन्तान थी। इसलिए सुलतान की गद्दी की वही वारिस थी। चूँकि अब शहजादी की शादी हो चुकी थी। इस कारण से शहजादी का पति अजीज़ ही सुलतान की मृत्यु के बाद गद्दी का अधिकारी हो सकता था। इसलिए जब सुलतान की मौत हो गयी तो अजीज़ को गद्दी पर बैठाया गया।

अजीज़ रहमदिल सुलतान बना। बेशुमार दौलत होने पर भी वह सबके साथ इज्जत का व्यवहार रखता था।

सैयद यह सब समाचार सुनकर पागल होगया।

एक दिन सुलतान अजीज़ अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ शहर में निकला। उसने फटेहाल, चीखते-चिल्लाते सैयद को देखा तो सवारी रोकने का हुक्म दिया और अपने ओहदेदारों को बुलाकर आदेश दिया, "तुरन्त इस आदमी का इलाज करवाओ। जब यह ठीक हो जाये तो हमें ख़बर दो। हम अपने इस दोस्त सैयद को एक हज़ार सोने की अशर्फ़ियाँ देंगे।"

आर्किटिक सील जलचर

आर्किटिक समुद्री प्रदेश में बर्फ के ढेरों पर सील जलचरों के बच्चे जब धीरे-धीरे रेंगने लगते हैं, तब उन के कोमल पीले रंग की चर्म पर सूर्य-किरण प्रसारित होकर झिल-झिल चमकने लगती हैं। भोले चेहरों, लंबी बैंगनीरंग की आँखों वाले सील के ये बच्चे बहुत सुन्दर लगते हैं !

मार्च के प्रारम्भ से लेकर अप्रैल के अन्त तक-दो महीने के दौरान में पैदा होने वाले सील के बच्चे एक हफ़्ते से अधिक जी नहीं पाते हैं ! क्यों कि इन के पैदा होने के बाद एक हफ़्ते के अन्दर उनके चर्मों का रंग बैंगनी हो जाता है। इस प्रकार परिवर्तित होने के पहले ही शिकारी उनको मार कर उनके चर्म निकाल करके ले जाते हैं। इस प्रकार प्रति वर्ष हजारों जलचर मारे जा रहे हैं। उनका कोमल चर्म संपन्न परिवारों की महिलाओं द्वारा धारण किये जाने वाले कोटों के बनाने के काम में लाये जा रहे हैं।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में वहाँ लगभग बीस मिलयन की संख्या में स्थित ये जानवर घट कर फिलहाल एक मिलयन तक पहुँच गये हैं ! न्यूफाऊण्ड लैण्ड "ग्रीनपीस" संस्थान वालों का कथन है कि अगर यही क्रम चालू रहा तो आगामी दस वर्षों में इस जानवरों की संतान के निर्मूल होने का खतरा है— यह संस्थान सील के बच्चों के शिकार को रोकने का प्रयास कर रहा है !

आर्टिटिक सील की संतान के ये जल जन्तु सस्थन हैं। इनमें हाथी-सील किस्म के जन्तुओं का वजन चार टन और उनकी लंबाई छे मीटर तक होती है। ये जन्तु पानी के भीतर की मछलियां, केकड़े, कीडों आदि को पकड़ कर खा जाते हैं। इनके कान इतने छोटे होते हैं, साफ़ दिखाई नहीं देते, फिर भी इनकी श्रवण शक्ति बड़ी तेज होती है।

ये जन्तु पानी के ऊपतितल पर आकर फेफडे भर हवा खींच लेते हैं और पानी में डूब जाते हैं। पानी में रहते समय दिल की धड़कन मन्दगति से होती है, इस कारण ये जन्तु देर तक पानी में रह जाते हैं पानी के भीतर अत्यन्त चुस्त रहने वाले ये जन्तु जमीन पर आने से बहुत ही आलसी जैसे लगते हैं।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ अक्तूबर १९८५ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

M. Natarajan   A. L. Syed

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों । ★ अगस्त १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए । ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा । ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें : **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

जून के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : **सह अस्तित्व !**

द्वितीय फोटो : **सम व्यक्तित्व !!**

प्रेषक : **आशीष तिवारी,** द्वारा श्री एस. एन. तिवारी, डी. आई. जी., सेक्टर-४, राउरकेला

'क्या आप जानते हैं ?' के उत्तर

१. ह्वेनसांग २. चालुक्य वंश का ३. अल्लाउद्दीन ख़िलजी ४. चौदह वर्ष ५. षाजी भोंसले

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

कमाल का मज़ा...गोल्ड स्पॉट का मज़ा

Artificially flavoured. Contains no fruit juice or fruit pulp.

serve chilled

माल्टोवा टोली
अचानक खुशी से भर दें झोली

उस दिन मिन्नी का जन्म दिन था। पूरी टोली उसके गार्डेन में जमी थी। साथ में था बचा हुआ चॉकलेट केक और हाथ में माल्टोवा का कप। क्या ही शानदार पार्टी हुई थी, लेकिन जिस नन्ही गुड़िया का जन्म् दिन मनाया गया वही खामोश बैठी थी।

"क्या बात है मिन्नी"?

"डब्बू, तुम्हे धीरू याद है न, अनाथाश्रम वाला, जो कल मेरी पार्टी में आया था? अनाथाश्रम मे किसी का जन्म दिन नहीं मनाते और अगले शनिवार को धीरू का जन्म दिन है" मिन्नी की आँखों से आंसू टपक पड़े।

सलीम को एक बात सूझी

सलीम ने सुझाव दिया कि धीरू के लिए चुपचाप पार्टी का आयोजन कर उसे यह खुशी अचानक दी जाए! सबको बात बेहद पसंद आयी। डब्बू और मालती ने अपने पाकेट खर्च के पैसे दिये। बेनू की मां ने केक बना दिया और मिन्नी ने अपने ही प्रेज़ेन्ट्स में से कुछ दे दिए।

धीरू को मिली अचानक खुशी

शनिवार के दिन धीरू को सलीम के घर आमंत्रित किया गया। उसे किसी ने भी जन्म दिन की शुभकामना नहीं दी थी इसलिए वह उदास था। दरवाजा खुला मिला तो धीरू ने जिज्ञासा की "हॅलो, कहां है सबलोग?" अचानक बत्तियाँ जली और धीरू ने देखा सभी वहीं है– अनाथाश्रम की उसकी मित्र मंडली और पूरी माल्टोवा टोली। सभी धीरू के लिए "हॅप्पी बर्थ डे" गा रहे थे।

पार्टी शानदार रही। एक बड़ा, गुलाबी और सफेद केक, सजीले गुब्बारे, विविध खेल, कई उपहार और गरमागरम माल्टोवा के कप, सब शामिल थे। इधर धीरू की भीगी आंखों में थी खुशी की चमक और होंटों पर शायद पहली बार, मुस्कान की दमक।

माल्टोवा का असर
सबसे अलग, सबसे बढ़कर

सचमुच माल्टोवा वाले बच्चे जिन्दगी का पूरा आनंद उठाते हैं क्योंकि माल्टोवा में है उत्तम गेहूँ, जौ, दूध, कोकोआ और चीनी की सम्मिलित पौष्टिकता जो उन्हें देती है बेहतर प्रतिरोध क्षमता, अधिक शक्ति और अधिकतम सामर्थ्य। माल्टोवा आपके बच्चों के जीवन में अपार उत्साह भरता है।

माल्टोवा क्लब का सदस्य बनिये।

बहुत आसान है। बस ५०० ग्राम वाले जार के तीन लेबल और भीतरी सील या ५०० ग्राम वाले रीफिल पैक के तीन टॉप फ्लैप निम्नांकित पते पर भेज दीजिए:

दि माल्टोवा क्लब
४ थी मंजिल, भण्डारी हाउस
९१, नेहरू प्लेस,
नई दिल्ली ११००१९

और समझिए शामिल हो गए।

JIL जगतजीत इंडस्ट्रीज लिमिटेड

विटामिन से भरपूर माल्टोवा: स्वास्थ्य, शक्ति और स्फूर्ति के लिए

SIMOES/JIL/002/85 HIN